जून १६४० मे साथी यशपाल की कहानियों के प्रथम संग्रह 'पिंजरे की उड़ान' की आलोचना मे नेशनल हैराल्ड ने लिखा था :—

"यह कहानियां संसार की किसी भी भाषा की कहानियों के संग्रह में ऊँचा स्थान पाने योग्य है।"

'पिंजरे की उड़ान' यशपाल की आरम्भिक रचनाओं का संग्रह थी। उन कहानियों का आधार मूलतः कल्पना थी। यशपाल की यथार्थवादी कल्पना के लिये सफलता की कसौटी यह रही है कि उनके उपन्यास 'दादा कामरेड' 'देशद्रोही' और 'मनुष्य के रूप' मे पाठकों ने अनुभूति को इतना गहरा पाया कि प्रायः ही इन कहानियों को यशपाल की आत्मकथा ही मान लिया गया परन्तु वह सब यथार्थ के आधार पर कल्पनात्मक रचनाये ही थीं। और:—

'वो दुनिया'

'वो दुनिया' उसी लेखक की चमत्कारपूर्ण और सार्थक कहानियों का संग्रह है।

विप्लव प्रकाशन संख्या—६

वो दुनिया

यशपाल

(चतुर्थ संस्करण)

प्रकाशक
विप्लव कार्यालय, लखनऊ

मार्च १९५६]

मूल्य २॥)

समर्पण

इस दुनिया की परिस्थितियाँ जीवन की राह बंद किये हैं ।
जीवन का उच्छ्वास कराह उठता है ।
इसी कराहट को कला में लपेट कर ।
दर्द भरे संगीत का रूप देना चाहते हैं ।

परिस्थितियों के भैरव विद्रोह में,
उस दुनिया की स्वर्णिम आशा में,
जहां हम मिलकर जी सकेंगे,
जहाँ हम मिलकर गा सकेंगे ।

इस कुण्ठित, दरद भरे गान में स्वर मिलाने वाले,
हमारी उस दुनिया की यह सुखद चाह तुम्हें समर्पित है ।

यशपाल

क्रम

१.	सन्यासी	६
२.	दो मुंह की बात	२०
३.	बड़े दिन का उपहार	२६
४.	दूसरी नाक	३४
५.	मोटरवाली-कोयलेवाली	४३
६.	तूफान का दैत्य	५५
७.	कुत्ते की पूंछ	५६
८.	शिक़ायत	६८
९.	गुडबाई दर्दे-दिल	७६
१०.	जहाँ हसद नहीं	८४
११.	नई दुनिया	९३
१२.	वो दुनिया	११५

दो दुनिया

मनुष्य का जीवन है, मनुष्य का शरीर है और मनुष्य के अधिकारों का दावा है इसलिए किसी के विधान में परवश होकर, पशु के गुण और धर्म कैसे स्वीकार किये जा सकते हैं ?

मनुष्यत्व की प्राणशक्ति और जीवन की इच्छा अपूर्ण साध के रूप में खड़ी होती है। अनेक रूप धारण करती हुई हमारी यह प्रवृत्ति ही हमारा जीवन और प्राण है।

प्राणों की पुष्टि और विकास ही सब से बड़ा सुख है। सुख का रूप बदलता रह कर भी चिरन्तन और शाश्वत है। इस सुख को अधिक सप्राण और सबल बनाने का प्रयत्न ही कला है। इसी उद्देश्य से सौन्दर्य की स्थापना खोज और सृष्टि की जाती है। कला के साधन से उसी सौंदर्य की सृष्टि और समृद्धि करना मनुष्य जीवन का उद्देश्य और क्रम है। अपनी इस शक्ति के बल से मनुष्य नई दुनिया की सृष्टि करता आया है। यह दुनिया मनुष्य की उसी कलामय शक्ति की देन है।

मनुष्य की कलामय शक्ति ही उस के लिए दुनिया बनाती है। उस की बनाई दुनिया कला के लिये अभिरुचि उत्पन्न करती है। सुख-सौन्दर्य और कला की प्यास को तृप्त करने का प्रयत्न सुख-सौंदर्य और कला की सृष्टि करने की शक्ति भी उत्पन्न करता है।

एक दुनिया के सौन्दर्य-सुख और कला के एक आदर्श का सम्पूर्ण सार चूस कर मनुष्य जब उसे फल्गु बना देता है तब इस दुनिया का रस चूस कर संचय की हुई शक्ति उसे नई दुनिया बनाने के लिये विकल करने लगती है। सौन्दर्य और सुख की भूख तृप्त करने के लिये मनुष्य के प्रयत्न में, सृजन की महान शक्ति अन्तर्निहित है।

जीवन की खास परिस्थितियों में जतना विकास सम्भव है उतना हो जाने पर वे परिस्थितियाँ और अधिक संकीर्ण हो जाती हैं; तब जीवन नई परिस्थितियों की सृष्टि करने के लिये तत्पर हो उठता है। यही उस की कला-मय शक्ति है।

इस दुनिया की संकीर्णता और असंगत परिस्थितियों के कारण विकल प्राण हो कर भी मनुष्य इस स्वनिर्मित सृष्टि के प्रति विरोध और वैमनस्य क्या प्रकट करे ? परन्तु उस का कलामय शक्ति नवीन रचना और विकास का प्रयत्न तो करेगी ही । और उस दुनिया की मधुर कल्पना में उसे शान्ति न मिलेगी हो । और 'वो दुनिया' उस जीवन के अवसर का आश्वासन दे कर पुकारेगी ही ।

कला के अनेक सुन्दर और सरल रूप हैं । उस का एक ढंग कल्पना में नई दुनिया बना लेना भी है, इसे ही कहानी गढ़ना भी कहते हैं अपनी परिमित सामर्थ्य के कारण मैं उतना ही कर के सन्तोष पाना चाहता हूं ।

× × ×

'वो दुनिया' कैसी होगी '' कैसी होनी चाहिये ? इस सम्बन्ध में अधिक तर्क को ले कर जीवन की मधुर आशा को कड़वी क्यों करें ! उस दुनिया के सम्बन्ध में एक बात सर्व-सहमत हो सकती है'''यह दुनिया विषमता से भर गई है । इस दुनिया का वैषम्य उस दुनिया में न होना चाहिये !

इन कहानियों में उस दुनिया का कोई स्पष्ट चित्र नहीं दिया जा सका । यत्न किया गया है, इस दुनिया के वैषम्य की ओर संकेत करने का ! इस दुनिया की कटुता से ही उस दुनिया की चाह उठती है इसीलिये दिल पुकार उठता है—"वो दुनिया !"

× × ×

इन कहानियों को प्रचार के दृष्टिकोण से नहीं लिखा गया । एक सीमा तक यह 'कला' का उद्गार है परन्तु उद्गार भी परिस्थितियों से ही उत्पन्न होते हैं । जीवन की आग की सांस उन में भरा रहता है । यदि समस्या की गन्ध इन में आ जाय तो लाचारी है ।

× × ×

धन्यवाद उन पाठकों को जिन्हें मेरा प्रयत्न सन्तोष देता है और धन्यवाद प्रकाशवती जी को उन के निरन्तर सहयोग के लिए ।

३, दिसम्बर १९४१
विप्लव लखनऊ

यशपाल

एक

सन्यासी

जीवन के सब से अधिक मधुर और मादक क्षण वे होते हैं जब आशा की मदिरा का नशा छाया रहता है। उस उत्साह में वर्तमान के प्रत्यक्ष होने वाले कष्ट और न्यूनताएँ भी भूल जाती हैं। एम० एस-सी० की परीक्षा से पहले नरदेव शर्मा के ऐसे ही दिन थे।

भविष्य जीवन के चित्र उस के सामने स्पष्ट थे। सब प्रकार से योग्य बन जाने के बाद, आशा के संसार में, उस का जीवन-पथ राजमार्ग की भाँति प्रशस्त था। सुख-सम्पदा के मनोरम वृक्ष उस पथ पर दोनों ओर से छाकर दुख-दारिद्रय और क्लेश के आतप को रोके हुए थे। उन वृक्षों के चिकने पत्तों में से प्रणय का सुखद समीर, मर-मर शब्द कर पथिक को थपकियाँ देता हुआ बह जाता था—केवल अधिक सुखद, अधिक शीतल बन कर लौट आने के लिए। पथ पर घने पत्तों से छन कर फैली हुई सुनहली धूप की चित्रकारी, बिखरी हुई छिन्न मंजरियाँ और बौराई विचित्र सुखद अनुभवों के समान थी। कोयल अपने स्वर को मधुर बना कर अलस तंद्रा में शनैः कूक देती थी। कोयल की उस सांकेतिक वाणी से बहुत अधिक मधुर और अर्थपूर्ण एक दूसरा शब्द उस के कानों की राह प्रवेश कर हृदय में स्फुरण कर देता था। वह शब्द जितने सुन्दर ओठों के स्पन्दन से उत्पन्न हुआ था उतना ही मधुर भी था। कल्पना के उस पथ पर चलता हुआ नरदेव जरा घूम कर अपने बाँई ओर देखता—लता की कोंपलसी सुकुमार, फूल की तरह सुवरण, उस के जीवन पथ की संगिनी, प्रेरणा भरे आनत लोचनों से उस की ओर देख रही है, प्रेम

के अधिकार से आश्रय माँगती हुई। उस युवती के आश्रय के लिए नरदेव की बाँह फैल जाती........।

नरदेव भविष्य जीवन के इस आशा-पथ पर जीवन की पूर्णता में भूला हुआ चला जा रहा था। कल्पना की चरम सीमा पर पहुंच कर उस का ध्यान टूटा। कल्पना की दृष्टि से सामने खुली हुई पुस्तक के जिन पन्नों पर वह यह सब कुछ देख रहा था, वहाँ वास्तव में केवल फिजिक्स के फार्मूले (सूत्र) छपे हुए थे। एक अंगड़ाई लेकर नरदेव ने घड़ी की ओर देखा, रात का डेढ़ बज गया था। कागज के एक टुकड़े पर पेन्सिल से उस ने हिसाब लगाया। जितने पन्ने उस ने दिन भर में दोहरा लिए थे उस हिसाब से प्रतिदिन पढ़ते जाने से वह परीक्षा से पहले पाठ्य-क्रम को मजे में दोहरा लेगा। दूसरी अंगड़ाई लेकर उसने पुस्तक बन्द कर दी।

बिस्तर पर लेट, शरीर को सुखद ऊष्ण वस्त्र में लपेट, आंखों के पट मूंद उस ने प्रत्यक्ष जगत से अपना सम्बन्ध विच्छेद कर लिया। उसने अपनी कल्पना की नाव भविष्य के सुख की धारा में ढील दी। केवल परीक्षा की वैतरणी पार करना शेष था। चौदह परीक्षाएँ सफलता पूर्वक पास कर लेने के कारण उसे एम० एस-सी० की परीक्षा में सफल होने का पूर्ण भरोसा था। इस के बाद जीवन की सफलताओं—कालेज की प्रोफेसरी, बड़े बैंक की मैनेजरी, मजिस्ट्रेटी, इन सब का अधिकारी वह हो जायगा परन्तु यह पद या स्थान ही तो जीवन का उद्देश्य नहीं। वे तो जीवन की पूर्णता और रक्षा का साधन-मात्र हैं। जीवन का उद्देश्य फिर है क्या ?....सम्पन्न जीवन ; कल्पना की वह तन्वांगी, जिस के शरीर का रेखा-चित्र विलायती पोशाक के व्यापारियों के सूचीपत्र पर बना रहता है, भारतीय वेश के लावण्य और सादगी में लज्जा से सकुचाई हुई, उसकी बाँह पर निढाल........। नरदेव का विद्याभ्यास और पुरुषार्थ, जीवन संघर्ष में अपने आपको बलवान और समर्थ बनाने का यत्न, सब उसी लक्ष को प्राप्त करने के लिए था। मानो नरदेव स्वयम् उसी देवी की पूजा, रक्षा और उपभोग का साधन-मात्र था। उस के बिना नरदेव का जीवन लक्षहीन और निरावलम्ब था। वह चाहता था, केवल पूजा, रक्षा और सेवा का यह अधिकार पाना।

नरदेव की यह कामना और लक्ष नितान्त सूक्ष्म था। उस की यह भावना

शारीरिक नहीं मानसिक भी, बल्कि आध्यात्मिक। मस्तिष्क में सुख की स्फूर्ति से उस के स्नायु तन गये। रक्त का वेग बढ़ जाने से उसने अपने शरीर को पूरा फैला कर शक्ति और सामर्थ्य के वेग को अनुभव किया। मन में उठे आल्हाद को फिर मन में ही समा देने के लिए उसने स्वयम अपना आलिंगन कर लिया और सुख की अनुभूति में डूब कर वह सो गया।

नरदेव के भविष्य जीवन के सुख और आशा का यह चित्र आधार-रहित न था। एक बरस से कुछ पहले, सम्बन्ध के एक विवाह-समारोह में नरदेव ने शीला को देखा था। सम्मिलित कुमारी समुदाय में उस से अधिक रूपवती और शिक्षित, दसवीं श्रेणी में पढ़ने वाली, दूसरी कुमारी न थी और युवकों में नरदेव सब से योग्य था। उसी समय उनके भावी सम्बन्ध का चर्चा चल पड़ा। इस के बाद अवसर मिलने पर नरदेव ने आँख उठाकर शीला की ओर देखा। कुमारी की आँखें लज्जा से झुक गईं। उसका लज्जा से यों सकुचा जाना, नरदेव के सीने में उतर गया। नरदेव को अपने भाग्य पर विश्वास था।

एम० एस-सी० पास करने के बाद बड़ी नौकरी न सही, साठ रुपया माहवार की एक नौकरी उसे मिल गई। उस के बाद चिर-प्रतीक्षित और चिर-कमनीय, उसके स्वप्न और जागरण की आराध्य देवी, उसकी कल्पना की चरम महत्वाकांक्षा, शील और सौम्य की सुन्दर मूर्ति उसके घर आ गई। सुहागरात में रात भर जागकर जब नरदेव ने शीला को प्रथम परस्पर-दर्शन की घटना याद दिलाई और उसके प्रति अपनी चिर-स्नेह तपस्या का रहस्योद्घाटन किया। आनन्द और उल्लास के उद्वेग से शीला के मुख से शब्द निकलना कठिन हो गया। उसी भावावेग में बहते हुए, लज्जा से आरक्त मुख, मुंदी हुई आँखें और बहुत धीमे अस्पष्ट शब्दों में उत्तर दे शीला ने अपनी तपस्या का हाल सुनाया—कैसे, नरदेव के परीक्षा पास करने पर भी उसे तुरन्त नौकरी नहीं मिली। शीला के माता-पिता उस के वर के सम्बन्ध में दुबारा विचार करने लगे। उस समय उसकी इच्छा हुई कि धरती फट जाय और वह उस में समा जाय। जिस के चरणों में एक बार आत्म-समर्पण कर दिया 'उनसे' मृत्यु भी उसे दूर न कर सकेगी। माता-पिता के सन्मुख कुछ कर सकना सम्भव न था परन्तु वह मरना तो जानती थी। विवाह क्या चाँदी के ठीकरों से किया जाता है? वह तो आत्मा का सम्बन्ध है; जन्मजन्मान्तर का सम्बन्ध।

आत्मविश्वास और अपने पौरुष के विश्वास से नरदेव का सीना फूल

गया। शीला को अपनी बांहों में ले, किसी सदूर अप्रत्यक्ष संसार की ओर देखते हुए उसने कहा—"शीला प्रिये, मुझे जान पड़ता है पिछले जन्म में भी हम किसी तपोवन की फूलों से छाई भूमि पर एक साथ ही यों घूमते-फिरते थे। मृत्यु ने आ कर उस नाटक पर पटाक्षेप कर दिया। जीवन की नयी परिस्थितियों में फिर हम लोग कैसे आ मिले ? कैसे हम दोनों ने एक दूसरे को पहली ही दृष्टि में पहचान लिया ?"

उत्तर में नरदेव के सीने पर सिर रख कर शीला ने आंखें मूंद लीं। भूत और भविष्य के अपने अमिट आत्मिक सम्बन्ध पर दोनों ने दीर्घ चुम्बन की मोहर लगा दी। दो आत्माएँ जो एक हो चुकी थीं, शरीरों की पृथकता जिन्हें दूर किये हुए थी, सशरीर एक हो गई। उस अन्तरहीन सामीप्य में किसी न्यूनता और अवसाद की अनुभूति के लिये स्थान न रह गया। आत्माओं का प्रबल आकार्षण शरीरों के एकीकरण के रूप में चरितार्थ होने लगा।

बैंक की ड्यूटी के अतिरिक्त नरदेव और शीला का सब समय एक साथ गुजरता। खाना-पीना, घूमना-फिरना सब एक साथ। घर के काम-काज तक में शीला का हाथ बंटाने में नरदेव को संतोष मिलता। बैंक की लेजरबुक में हिसाब लिखते समय वह शीला के जीवन को अधिक सुखमय बनाने का उपाय सोचता रहता। वह शीला के लिये क्या कुछ घर ले जा सकता है; कैसे वह अपनी आमदनी को बढ़ा सकता है ? मार्ग में सर्र से मोटर पर निकल जाते हुए जोड़ों और सड़क के किनारे भव्य बंगलों के बरामदों में फूलों के गमलों से घिरी, आराम कुर्सी पर बैठ कर स्वेटर बुनती हुई, सभ्य महिलाओं की ओर देख कर वह सोचता, वह भी अपनी शीला के लिये ऐसा ही घर तैयार करेगा।

बड़े शहर के एक असुन्दर मुहल्ले में, हैसियत से कुछ अधिक किराये का मकान ले कर उन्हों ने अपना बसेरा सजा लिया था। नरदेव का मन चाहा सामान उस मकान में न होने पर भी शीला की उपस्थिति उसे सुखद और रमणीक बनाये थी। नरदेव की अनुपस्थिति में शीला हाथ की दस्तकारी से मकान को सजाने का यत्न करती। उस के बैंक से लौटने के समय स्वयम् अपना शृंगार कर वह नरदेव के लिये दर्शनीय बन तैयार हो जाती और शेष समय में वह उपन्यास पढ़ अपनी कल्पना को सजग करने का उपाय करती।

× × ×

शीला की गोद में पहली लड़की तीन बरस की न होने पाई थी कि लेडी डाक्टर ने उसे तीसरी बार फिर से सचेत रहने की चेतावनी दे दी। नरदेव घबरा गया। प्रथम प्रसव और उस के परिणाम स्वरूप उलझनों से अभी छुटकारा न मिल पाया था। कर्ज और उस का सूद अभी शेष था। अर्थ-संकट दूर करने के लिए शब्द-पहेलियों (क्रासवर्ड पजल) में उसने जितनी माथा-पच्ची की कि उस से डाक का खर्च बढ़ने के अतिरिक्त कोई लाभ न हुआ। अकाउण्टेण्ट की डिग्री की परीक्षा वह देना चाहता था परन्तु उसके लिए फीस न जुट पाती थी और न मानसिक अवस्था ही इस योग्य थी।

बैंक में तरक्की की कोई आशा दिखाई नहीं देती थी। वहाँ सभी क्लर्क एक दूसरे की जड़ काट कर अपनी जड़ मजबूत करने के यत्न में लगे हुए थे। सब ओर से निराश होकर भी नरदेव ने साहस किया। वह सुबह एक ट्यूशन पढ़ाने लगा और शाम को एक व्यापारी का लेखा लिख देने का काम उस ने ले लिया परन्तु सब कूटन-छाजन समेटकर भी सिलसिला ठीक से नहीं बैठ पाया। प्रेममयी शीला शाखा-प्रशाखा सहित अपने विस्तृत रूप में फैल रही थी परन्तु उनकी प्रेम कुटीर से प्रेम कूजन की गूंज लुप्त हो गई। अब वहां सुनाई देती थी—बच्चों के रोने-चिल्लाने की पुकार, शीला की दरद भरी कराहट और कभी-कभी नरदेव की झल्लाहट।

आनन्द और उत्साह की बात भूलकर अपना कर्तव्य समझ नरदेव शीला और बच्चों के आराम के लिए प्राण तक देने के लिए तैयार था परन्तु उस के मूल्यवान प्राणों के मूल्य में दैनिक आवश्यकता की अत्यन्त साधारण वस्तुयें भी न मिल पाती थीं। उन्नति और विकास की बात वह भूल चुका था। अब वह चाहता था, केवल अपने प्राणों को तिल-तिल निछावर करके भी, किसी तरह स्त्री और संतान का पेट भर सके। अब उस की कल्पना भविष्य जीवन के लिए मनोरम राजपथ तैयार न करती थी। उस की सीमा अब बनिये के हिसाब, ब्याज और दूध के खर्च तक रह गई। और जब उस की कल्पना इन सब चिन्ताओं की प्रतिक्रिया में सीमा लांघकर गहराई में चली जाती, उसे जान पड़ता—उस का जीवन एक बोझ-मात्र है। वह अव-साद और निराशा में डूब जाता। एक प्रकार की भावना से वह अपनी सन्तान को अपने जीवन की शक्ति चूस लेने वाला शत्रु समझने लगता,

दूसरे समय उन्हें सीने से लगा कर, वह अपने दुख क्लेश को भूल जाने का यत्न करता।

× × ×

शीला पाँचवे प्रसव की पीड़ा से कराह रही थी। उस कराहट के कारण नरदेव के लिए नींद लेना कठिन था। वह सोना भी नहीं चाहता था। किसी समय किसी विशेष आवश्यकता के कारण उसे अंधेरी गलियों में दौड़ना पड़ सकता था। पहले भी ऐसा हो चुका है। मन और शरीर की शिथिलता और तत्परता के एक विचित्र संयोग की अवस्था में वह सिरहाने के पीछे स्टूल पर पीतल का पुराना टेबिल लैम्प जला कर लेटा हुआ, सामने दीवार की ओर निरुद्देश्य दृष्टि लगाये था। सामने दीवार पर टंगी, शीशे में मढ़ी, बरसों से उपेक्षित फोटो पर उसकी आँखें जा टिकीं। उस कमरे में लगी अन्य तीन-चार तसवीरों की तरह वर्ष में एक बार दीवाली पर उसे भी झाड़-पोंछ दिया जाता था।

उस फोटो का अतीत इतिहास नरदेव को याद आने लगा। पहले वह फोटो अंगीठी की कानस पर रखी रहती थी ताकि आते-जाते सदा सम्मुख रहे। शीला कभी-कभी उस पर फूल का हार चढ़ा दिया करती थी। बड़ी लड़की सुरमा जब तीन बरस की थी, एक दिन उस के हाथ की लकड़ी से तसवीर के काँच में एक मोटा बाल पड़ गया। उस दिन नरदेव और शीला दोनों को ही बहुत बुरा लगा परन्तु अबोध बच्चे को क्या कहा जा सकता था। तसवीर को कानस से उठा कर दीवार पर लटका दिया गया। जिन बीते दिनों की याद वह दिलाती थी, उन्हीं की तरह वह भी विस्मृत हो गई।

तसवीर नरदेव और शीला के विवाह के कुछ ही दिन बाद की थी। वे दोनों एक ही तिपाई पर एक दूसरे के सहारे बैठे हुए दिखाई दे रहे थे। फोटो में शीला का वह रूप और अवस्था थी, जिस पर नरदेव ने अपने आप को निछावर कर दिया था। काँच पर पड़ा मोटा बाल नरदेव और शीला को जुदा करता हुआ नरदेव के कंधे के ऊपर से होकर गुजर गया था। बाल की संधी की राह प्रवेश कर गई सीलन और महीन धूल ने नरदेव के चेहरे के रंग को विकृत कर दिया था। बाल से दूर रहने के कारण शीला का

चेहरा अब भी बहुत कुछ ज्यों का त्यों बना था । तसवीर में अपने चेहरे का बिगड़ जाना नरदेव को अन्याय जान पड़ा ।

वह सोचने लगा, चित्र में दिखलाई देने वाला शीला का बाँकी शीराजी कबूतरी जैसा रूप एक धोका था । आज वह हाल ही में अण्डों पर से उठी हुई, परझडी, चूजों से घिरी हुई मुर्गी की तरह है जो हर समय कुड़कुड़ाती रहती है ; यही उसकी असलीयत है । वह स्वयम् चित्र में जैसा रूपवान युवा जान पड़ता था, बहुत कुछ वैसा ही आज भी है । केवल उस के बाल खिचड़ी हो गए हैं और चिन्ताओं के कारण चेहरे पर ज़रा ढीलापन आ गया है । यह सब चिन्तायें आई कहाँ से ? इन सबका स्रोत यह औरत ही तो है, जिस ने उस की उन्नति के पथ को रोक दिया । कितनी महत्वाकांक्षायें, कितना उत्साह उसके हृदय में था ? एक वेगवान नदी की तरह वह सभी बाधाओं को दूर करता हुआ आगे बढ़ सकता था परन्तु इस औरत ने रेत के मैदान की तरह आगे आकर उस की शक्ति के प्रवाह को सोख लिया । वह एक फैला हुआ दल-दल मात्र बन गया । उस की शक्ति आगे न बढ़ कर इस औरत और उस से पैदा होते जाने वाले बच्चों के पालन में डूब गई । यह औरत और बच्चे उस की शक्ति के भंडार में छिद्र हैं । वह कुछ भी करे, वह आगे बढ़ने के लिए शक्ति संचय नहीं कर सकता । सभी तो कहते हैं--- स्त्री भ्रम और माया का मोहक रूप है ।

एक दीर्घ निश्वास लेकर उसने फिर उस फोटो की ओर देखा और उसे फिर याद हो आया, उस समय कितना उत्साह उस के मन में था ? साठ रुपये की नौकरी स्वीकार करना उसे अपना अपमान जान पड़ा था । केवल इस औरत के माता-पिता का मन रखने के लिए, कुछ दिन की बात समझ कर ही यह नौकरी स्वीकार कर ली थी, यह सोच कर कि आरम्भ सदा नीचे से ही किया जाता है । यह रुकावटें न आ जातीं तो वह पी० सी० एस०, आई० सी० एस० की परीक्षा देकर सहज ही मजिस्ट्रेट बन सकता था । परन्तु वे सब स्वर्ग-स्वप्न सदा के लिए विलीन हो गये । उस के पैरों में इतना बोझ बंध गया है कि वह कदम ही नहीं उठा सकता । इसी को तो कहते हैं भाग्य -- पुरुष योग्यता रहते और पुरुषार्थ करते हुए भी कुछ न कर सके ! क्या वह इसी प्रकार दरिद्रता के दल-दल में फंस कर सड़ने योग्य था ?

शीला के कराहने की आवाज़ निरन्तर आ रही थी। बीच-बीच में दरद की टीस उठने पर वह चीख भी उठती थी। उसका वह कराहना और चीखना नरदेव को बुरा मालूम हो रहा था। शीला के प्रथम प्रसव के अवसर पर उसकी पीड़ा के ध्यान से नरदेव का हृदय मुंह को आने लगता था। अब वह बात न थी। दाई मौजूद है और क्या किया जाय!— उस ने सोचा और फिर तर्क ने कहा—"स्त्रियों को तो यह सब होता ही है। यह सब उनका स्वभाव और जीवन है।"

शीला के भाग्य के प्रति करुणा का विचार आने से पहले उस का ध्यान चला गया स्वयम् अपने भाग्य की ओर। उस शारीरिक पीड़ा से कहीं अधिक मानसिक यंत्रणा वह स्वयम् भुगतता रहता है और भुगतता रहेगा। आज के इस प्रसव के बाद उस की मानसिक यंत्रणा और बढ़ जायगी। पहली सन्तान के बाद से प्रत्येक प्रसव के समय वह इसी प्रकार की मानसिक यंत्रणा का शिकार बना है। अनेक बीभत्स और कुत्सित विचार उस के मन में आये हैं। प्रसव के इस संकट में नई आती हुई सन्तान यदि मर जाय, यदि संतान और माता दोनों ही मर जायँ ?

वह निश्चय न कर पाता था कि सन्तान और माता मर जायं या नहीं ? सन्तान की मृत्यु से उसे दुःख होगा परन्तु जीवन भर के बोझ से वह बच सकेगा परन्तु माता की मृत्यु के विचार से वह कांप उठता था। सन्तान की माता अब स्वप्न की काम्य सुन्दरी नहीं, सन्तान का वहन करने वाली माता थी''''और यदि सब एक साथ मर जायँ तो !''''दुख से नरदेव का हृदय चकनाचूर हो कर उस का संसार सूना हो जायगा परन्तु वह सब जिम्मेवारी और बोझ से छूट जायगा। उस दुख में संसार से विरक्त होकर वह एक सन्यासी बन जायगा जिसका संसार में कोई नहीं। वह न दुख को दुख समझेगा न सुख को सुख ! वह मुक्त हो जायगा। परन्तु कभी कोई मर न सका। क्यों कि नरदेव अपने दुर्भाग्य से कर्तव्य पूरा करने के लिये मौजूद था।

चार बच्चों की रोटी पांच को बाँटनी पड़ेगी। मतलब यह कि प्रत्येक भूखा रहेगा और उसके लिये नरदेव क्या कर सकेगा ? क्या कुछ करने का यत्न उसने नहीं किया ? परन्तु उस के पैरों में बेड़ियाँ जो पड़ गई हैं। इसी

प्रकार मानसिक यंत्रणा सहते-सहते एक दिन वह समाप्त हो जायगा परन्तु उस समय उस की मानसिक यंत्रणा कितनी विकराल होगी........? और मृत्यु के पश्चात् फिर नवीन जन्म। इस से पहले जन्म में वह क्या था ? सहसा उसे स्मरण हो आयी अपनी सुहागरात........शीला के गले में बाँह डालकर उस ने कहा था हम तुम जन्म-जन्म के साथी हैं। पिछले जन्म में हम तपोवन की फूलों से छाई भूमि पर इसी तरह घूमते-फिरते थे।—उसने अपनी उस मूर्खता पर घृणा से मुख बिचका लिया।

नरदेव ने उदासीनता से सोचा, पिछले जन्म के संस्कारों से उस की आत्मा कितनी निर्बल हो चुकी है। इस जन्म के संस्कारों से वह और भी गिर रहा है। मानसिक यंत्रणा और मोह को ही वह अपने जीवन का लक्ष स्वीकार किये बैठा है। अब उस के जन्म-जन्मान्तर के लिये यही सिलसिला है जिसमें प्रत्येक नया जन्म अधिक घृणित और कुत्सित नाली के कीड़े की तरह होगा जो गन्दगी में रहकर भी उस से मोह और प्रेम करता है। नरदेव स्वयम् अपने शरीर को नाली की गन्दगी में रींगता हुआ अनुभव करने लगा। उसने सोचा—वे कीड़े भी मेरी ही तरह संस्कारों में फँसी आत्मायें हैं ! वीभत्स कल्पना से उस का रोम-रोम थर्रा उठा। उसने अनुभव किया, वह पतन के अथाह में गिरता चला जा रहा है। उसे शीला की कराहट सुनाई देनी बन्द हो गई।

शीला की एक तीखी चीख सुनकर उस की चेतना लौट आई। अपने गालों पर बहते आंसू को पोछने के लिये उस ने चेहरे पर हाथ फेरा जहाँ दो दिन की उपेक्षित हजामत आँसुओं में भीग चुकी थी। उसके मन ने पूछा हाय, मैं इतना कुत्सित हो गया हूँ; इतना घृणित ? किस प्रकार अपनी आत्मा की रक्षा मैं कर सकता हूँ ?.........क्या मैं पतन की अन्तरहित सीढ़ी तक इसी प्रकार गिरता जाऊंगा, जन्म जन्मान्तर तक ?........कभी नहीं ! वह उठ कर फर्श पर पैर टिका कर बैठ गया।

भीतर से शीला की कराहट के साथ ही दूसरी ओर से बड़ी लड़की सुरमा की तीखी आवाज भी आ रही थी जो अपनी छोटी बहन के चुप-चाप न सो कर व्यर्थ जिद्द करने और रोने की शिकायत कर रही थी। नरदेव यह सब कुछ नहीं सुन रहा था। वह अपनी आत्मा को मोह और

पतन से बचाने का दृढ़ निश्चय कर रहा था—"मैं जन्म-जन्मान्तर के पतन के बंधन से मुक्त होऊंगा।"

दाई बिना दाँत के पोपले मुंह से गरज रही थी— "कहाँ हैं बाबू !.... लड़के का मुंह दिखाया है। अब की मैं चाँदी की ठोस चीज लिए बिना नहीं मानूंगी !......कहां हैं बाबू ?"

दाई के लँगड़ाते कदमों की अवज्ञा कर हिरनी की तरह कुलाचें भरती और चिल्लाती हुई सुरमा आई—"बाबू जी, भैया हुआ....!"

इस सब आन्दोल्लास को सुनने वाला वहां कोई न था। मकान का बाहर का दरवाज़ा खुला पड़ा था और नरदेव की चारपाई खाली थी।

× × ×

ऋषीकेष से आगे बद्रीनाथ धाम की सड़क पर यात्रियों में एक सन्यासी पैदल जा रहा था। उस के पैरों में फटी बिवाई से रक्त बह रहा था परन्तु वह उस ओर न देखता। जब दूसरे यात्री प्रचण्ड धूप में सराय, दुकानों और वृक्षों के नीचे विश्राम करते हैं वह किसी तपी हुई चट्टान पर बैठ जाता है। रात में थक जाने पर वह बर्फ़ीली, तीखी वायु के थपेड़ों में चट्टानों पर लेटा रहता है। मार्ग में चलते हुए यात्रियों, स्त्रियों और कण्डी पर चढ़े हँसते-रोते बच्चों की ओर नहीं देखता। अपने शरीर की आवश्यकताओं के सम्बन्ध में वह इस तरह बात करता है मानो किसी अन्य व्यक्ति के सम्बन्ध में चर्चा कर रहा हो। भूख लगने पर केवल एक बार किसी भी व्यक्ति से, जो भी सामने आ जाय, बिना उस की ओर देखे भिक्षा मांग लेता है। यात्रियों में उस के संयम और त्याग का बहुत चर्चा है।

उस दिन थका देने वाली यात्रा के बाद जिस व्यक्ति से उस ने भिक्षा चाही वह एक कुली था। यह कुली बहुत बड़ा बोझ पीठ पर उठाये यात्रियों के पीछे-पीछे लाठी टेकता हुआ चला आ रहा था। उस के माथे का पसीना लगातार एड़ियों तक बह-बहकर धूल में चिन्ह बनाता आ रहा था। कुली ने पड़ाव पर पहुंच, अपने बोझ को एक चट्टान के सहारे टिका, उकड़ूं बैठ शरीर को बोझ की रस्सियों से मुक्त किया। माथे के पसीने को हाथों से

धूल में टपका उस ने अपनी कमर से रात की बनी सूखी, मोटी रोटी की गाँठ खोली। उसी समय उस के सम्मुख खड़े हो सन्यासी ने कहा—"साधू का शरीर भोजन माँगता है।"

कुली ने उपेक्षा से साधू की ओर देखा और लोभ भरी दृष्टि से अपनी रोटियों की ओर। फिर एक बार साधू के गम्भीर निश्चल चेहरे की ओर उस ने आंखें उठाईं। सहमते हुए हाथ से तीन में से एक रोटी उठा कर उस ने साधू की ओर बढ़ा दी।

साधू की मुद्रा शान्त थी। उस ने कुली को आशीर्वाद दिया—"मोह मुक्त हो।"

दो

दो मुंह की बात

मसूरी की बरसात। घने सुरमई बादल ऐसे छा रहे थे कि कहीं कोई ओर-किनारा दिखाई न देता था। मूसलाधार पानी यों बरस रहा था मानो पहाड़ की चट्टानों को तोड़ देना चाहता हो। मैं बेबस खिड़की के सामने बैठा यह सब देख रहा था। कहीं बाहर जाना सम्भव न था इसलिए शिथिल शरीर शाल ओढ़े, कुर्सी पर लुढ़क एक रूसी उपन्यास का अनुवाद पढ़ने की तैयारी करने लगा।

बरामदे में पानी भरे भारी जूतों की आहट आई। गर्दन घुमा कर देखा, उस भारी बरसात में ही जसवन्त चला आ रहा है। उस ने बरसाती से बहते हुए परनालों और जूतों में लगे कीचड़ से फर्श के खराब होने की कुछ भी परवाह न कर, बरसाती को खूंटी की तरफ फेंक दिया। बरसाती निशाना चूक कर फर्श पर गिरी। जसवन्त ने उस ओर नहीं देखा। उस की चाल और चेहरे के भारीपन से जान पड़ता था, कोई असाधारण घटना हो गई है।

जसवन्त ने मेज के पास कुर्सी को एक ओर पटका और उस पर बैठ गया। कोहनी मेज पर टिका, ठोड़ी हथेली पर रख, वह दीवार की तरफ यों देखता रहा मानों मैं कमरे में हूं ही नहीं, या उस ने देखा नहीं।

"क्यों ?" हाथ की किताब बन्द कर पूछा।

दो दफे 'क्यों' पूछने पर भी जब उत्तर न मिला तो मेज पर झुक चिंता से पूछा—"आखिर बात क्या है ?"

हथेली पर रखी हुई ठोढ़ी को मेरी तरफ घुमा कर उस ने उत्तर दिया — "बात क्या है ? कुछ भी नहीं, पर''''आखिर बदगुमानी की भी एक हद है ! दुनिया में सभी लुच्चे-लफंगे नहीं।"

"तुम्हारा मतलब ?"—घबराकर पूछा ।

ठोढ़ी को हथेली से हटाये बिना वह बोला—"आदमी नेक-नियती से, शराफ़त के खयाल से मदद करना चाहे और उसे उचक्का और बदमाश समझा जाय''''''''?"

परेशानी से सोचने लगा —मुझ से कब क्या गलती हो गई ? डरते हुए पूछा—"कुछ बताओगे भी ?"

अब की वह दोनों हाथों की मुट्ठियाँ जोर से बन्द कर बोला—"मेरा दिल नफ़रत से भर गया है और मैंने सचमुच क़सम खा ली है कि अगर मेरे जमीन पर थूक देने से भी ऐसी लड़कियों की जान बचती हो तो वह भी मैं नहीं करूँगा''''''''"

संतोष से एक लम्बी साँस ली। ख़ैर, बात किसी लड़की की है।

युवकों पर नवयुवतियों की ओर से होने वाले अत्याचारों की कथा से अपना दिल तो कभी का पत्थर हो चुका है, एक चोट और सही। जरा और आगे सरक नौकर को चाय लाने का हुक्म दे मैंने गम्भीरता से प्रसंग आरम्भ किया— "हुआ क्या ?"

"तुम तो जानते ही हो मैं इन पहाड़ों में बारिश का कभी एतबार नहीं करता। हमेशा बरसाती और छतरी साथ रखता हूँ। अभी यह बारिश भी जिस तरह आयी, कोई ख़याल ही न था। 'कैमल बैक रोड' से आ रहा था। कब्रिस्तान के पास एकदम पानी आ गया। थोड़ी ही दूर आगे 'तिलक लायब्रेरी' के पास की सड़क के किनारे बनी टीन की छाजन तक पहुँचा था कि पानी ने जोर पकड़ लिया। छतरी का किनारा माथे पर झुका, भाग कर छाजन में शरण ली। छाजन के नीचे जाकर देखा, बेंच पर तीन लड़कियाँ बैठी हैं।

"वे लड़कियाँ ऐसे सकपकाने लगीं मानों मैं चोर-डाकू हूँ, किसी के घर में घुस आया हूँ। घबराहट से उनके चेहरे लाल-पीले हो गए। मैं छाजन के

पच्छिम कोने पर खड़ा था। बौछार पूरब की ओर से आ रही थी। मेरी तरफ पीठ कर वे लड़कियां आपस में फुसफुस करने लगीं। हवा पूरब की थी इसलिए उनकी बात स्पष्ट सुनाई पड़ रही थी।

"सब से पच्छिम तरफ बैठी बौटलग्रीन (मूँगिया) रंग की साड़ी वाली लड़की अपने पूरब बेंच पर बैठी दोनों लड़कियों से पूरब की ओर खिसक जाने के लिए कहने लगी ताकि वह मुझ से दूर हो सकें। बेंच के उस सिरे पर लगातार पानी पड़ रहा था। पूरब ओर की सफेद साड़ी वाली लड़की पानी मे सरकने के लिए तैयार न थी। धीमे स्वर में उसने कहा—"खा थोड़े ही जायगा ?"

"लेकिन बौटलग्रीन साड़ी वाली लड़की उसे आगे सरकने के लिए मजबूर करती रही। उसे काफी आगे सरकते न देख वह खुद उठ कर बारिश में बैठने चली।

"यह हाल देखा तो मजबूर हो मैं खुद बौछार की ओर जा खड़ा हुआ और उन से कहा—"आप क्यों भीगती हैं ? आप खुश्क जगह पर हो जाइए। लीजिए मैं इधर हो जाता हूं।"

मेरे उस ओर जाते ही वे तीनों बेंच छोड़ कर छाजन के उत्तर किनारे पर जा खड़ी हुईं।

"मैं परेशान था, आखिर क्या करूँ ? लौट कर मैं फिर पच्छिम तरफ आ खड़ा हुआ कि वे बेंच पर बैठ सकें परन्तु वे और भी अधिक पानी में हो गईं। बौटलग्रीन साड़ी वाली, बाकी दोनों लड़कियों से छाजन से निकल चलने के लिए कहने लगी।

"इसी वक्त रिक्शा सड़क पर से गुजरी। रिक्शा को देख वे खड़ी हो गयीं। कोई भी समझ सकता था, उन्हें रिक्शा की जरूरत है। मैंने पुकारा—"ओ रिक्शा।" लेकिन रिक्शा खाली नहीं थी।

"पूछा—आपको रिक्शा चाहिए, मैं जाकर ला दूं !—जवाब में मेरी तरफ पीठ कर ओंठ चबाती हुई वे और भी बारिश में हो गयीं।

"हरी साड़ी वाली लगातार दूसरी दोनों लड़कियों से शेड छोड़ कर बारिश में चल देने के लिए कहने लगी। सफ़ेद साड़ी वाली को साड़ी भीग

जाने के खयाल से एतराज था। बीच वाली रिक्शा का इन्तजार करना चाहती थी। हरी साड़ी वाली की जिद्द पर जब उन्हें उस बारिश में ही सड़क की तरफ बढ़ते देखा तो मैंने कहा— 'अगर आप को बारिश में ही जाना है तो यह छतरी ले जाइए।"

"मेरी बात सुन उन्हें ऐसे कंपकंपी आ गयी मानो गरम लोहा छू गया हो। बिना छतरी के ही बारिश में चले जाने की उन की जिद्द देख मैंने कहा—"मेरे यहां ठहरने में आप को एतराज है तो आप ही यहां ठहरिए। लीजिए, मैं ही चला जाता हूं!" और मैं इस बारिश में भीगता हुआ यहां तक आ गया।

"तुम्हीं बताओ, है नीचता और बेएतबारी की हद्द! ये लड़कियां समझती हैं, वे सब स्वर्ग लोक की अप्सराएं हैं या मिठाई की तश्तरी हैं कि भूखे कौओं की तरह इन पर झपट पड़ेंगे और मौका पाते ही निगल जायंगे। आदमी सब बदचलन हैं और ये शरीफ हैं!"

इतना कह चुकने के बाद जसवन्त ने प्याले से ठण्डी होती हुई चाय की तरफ नजर डाली और फिर गुस्से से मेरी तरफ देख कर बोला—"आखिर इस शक की वजह?"

लड़कियों का अभिमान, पुरुषों पर उन की ज्यादती, यह सब ऐसे विषय हैं, जिन पर बरसों तर्क हो सकता है और बीतते समय का भी ख्याल नहीं रहता इसलिये चुप रहना ही बेहतर समझा। बातों ही बातों में बारिश रुक कर फिर धूप निकल आयी। पहाड़ का आकाश और बच्चे की आंखें; इनके रोने हंसने में देर नहीं लगती। घड़ी में देखा, पांच बज रहे थे।

जसवन्त उठ कर चलने की तैयारी करने लगा। मुझे भी खयाल आया, साढ़े छ: बजे दत्त के साथ 'रिंकथियेटर' में मनीपुरी डांसिंग पार्टी का नाच देखने जाने की बात की थी।

×   ×   ×

छ: बजे दत्त के मकान पर जा कर देखा कि जैसे 'रिंक' चलने की बात वह बिलकुल ही भूल गया हो, लेटा हुआ अखबार का एक सफा पढ़ रहा है। ऊंची आवाज में चिल्ला कर पुकारा—"वाह रे! छ: बज गए और

जनाब को अभी तक होश नहीं।" लेकिन वह बिलकुल निश्चल, जैसे प्राणायाम कर रहा हो।

जवाब दिया उस की बहन साधना ने। दूसरे कमरे से आ कर बोली—"बैठिये, भाई साहिब !"

घड़ी दिखाते हुए मैंने कहा—"बैठने का समय कहाँ है ? दत्त ने मुझे 'रिंक' चलने के लिए बुलाया है।"

"भइया तो जरा हमारे साथ जा रहे हैं। आज कुलड़ी बाजार में मेरी एक सहेली के यहाँ पार्टी है।"

"तो तुम जाओ"—जवाब दिया, "मैं तो दत्त की बात कह रहा हूं।"

"हाय, अकेले ! मैं मर गयी !"—साधना ने भय से सांस रोक कर उत्तर दिया, "बाबा मैं अकेली कभी नहीं जा सकती। इन मर्दों के मारे अकेले कोई कहीं जा सकता है ? पता है आप को ? आज ही ! मैं तो अकेली जाती ही नहीं थी। राधा और शीला सुबह आ गई। वे मुझे जबरदस्ती साथ ले गयीं। रास्ते में बड़े जोर का पानी आ गया तो हम लोग कैमलबैक-रोड वाले टीन के शेड में चली गयीं। हम तीनों को अकेली देख एक आदमी झट से वहाँ आ घुसा। मैं तो डर के मारे कांपने लगी। हम लोग एक तरफ बैठी तो वह बदमाश कहता क्या है— "अजी आप भीगती क्यों हैं, यहाँ ही बैठिये।"

और जब हम चुप रहीं तो खुद आ कर पानी में हमारे पास खड़ा हो गया। मुझे तो बड़ा डर लगा। मैंने राधा से कहा—"चल उठ, जल्दी चलें, यहाँ पानी बरसते में अकेले ऐसे बैठना ठीक नहीं।" पर वह रिक्शा के बिना हिलना नहीं चाहती थी। उस बदमाश ने देखा कि इन्हें रिक्शा की जरूरत है तो कहता क्या है, "मैं जा कर ला दूं रिक्शा ?"

"पूछो भला तुझे मतलब ? दिल में आया कह दूं, तू अपनी मां-बहनों को ला कर दे। पर मैं चुप रही। मैं तो पहले ही कहती थी कि जल्दी चलो परन्तु शीला को अपनी क्रेप की साड़ी खराब होने का डर रहा था हालांकि मेरी सिल्क की बाटलग्रीन साड़ी खराब हो गयी पर मैंने कहा, ऐसे आदमी के साथ अकेले में कौन ठहरे ? मैंने फिर उन लोगों से चलने को कहा तो बेशरम कहीं का कहता क्या है ?—"अजी हमारी छतरी ले जाओ, भीगती क्यों हो ?"

"और जब हम बारिश में चल दीं तो हमें अहसान जताने के लिये कहता क्या है—अजी, आप हमारी वजह से बारिश में क्यों जा रही हैं ? लीजिए, हमीं जाते हैं आप यहीं रहिये ।—भैय्या, मुझे बड़ा गुस्सा आया पर चुप रह गयी । अब आप ही बताइए, ऐसी हालत में कहीं कोई लड़की अकेली जा सकती है ?"

एक कान से मैं साधना की बात सुनता रहा और दूसरे कान में जसवन्त के मुंह से सुनी कहानी गूंज रही थी । एक बार खयाल आया, जसवन्त की कहानी दोहरा दूं परन्तु उस से मजा किरकिरा हो जाता ! स्त्री और पुरुष के अलग-अलग संसार एक में मिल उलझ जाते, इस से दो मुंहों की बात अलग-अलग ही बनी रहने दी ।

तीन

बड़े दिन का उपहार

शक्लों की ही तरह कुछ नामों में भी गलतफहमी की गुंजाइश रहती है । उदाहरण के लिए आप 'हैमिल्टन' को ही लीजिए । हैमिल्टन, सुनते ही अंग्रेजी राज के जमाने में एक रोबीले अफसर की आकृति आँखों के सामने आ जाती थी, जो ऊंचे कुम्मैत घोड़े पर सवार हो । हाथ में हण्टर और घुटनों तक वैलिंगटन बूट । लोग झुक-झुक कर सलाम करते हैं और वह कनखियों से देख जरा गर्दन झुका देता है ।

परन्तु हमारे हैमिल्टन साहब का ढंग दूसरा था । लोग उन का कुछ अदब करते थे तो इसलिये कि उन से डरने की कोई वजह ही न थी । उन के पुरखों ने 'राजा का धर्म' स्वीकार कर अपनी स्थिति को ऊंचा उठाने का यत्न किया था परन्तु हैमिल्टन साहब को उस का कुछ ध्यान न था ।

कई दफे रुकने और फिसलने के बाद जब एक-एक कुर्सी आगे बढ़ते वे हेडक्लर्की की कुर्सी पर पहुंच ही गए तो अपने मातहत क्लर्कों पर नाराज हो जाने से, गुस्से में उन का काम खुद करने लगते । और बड़े साहब से अब भी यों बात करते मानों वे अप्रेन्टिस हों । चपरासी उन्हें सलाम करते थे तो अपनी तबीयत से, कायदे के ख़याल से नहीं । अनपढ़ श्रेणी के लोगों में उन का असली नाम बहुत कम लोग जानते थे । एक क्रमागत नाम ऐसे लोगों के लिये चला आया है, 'पिलपिली साहब !' बस यही नाम हैमिल्टन साहब का उन की पीठ पीछे लिया जाता था ।

ऐसे गरीब और निरीह आदमियों का लिहाज भाग्य नहीं करता। हैमिल्टन साहब के घर में सिवाय उन की मेम के और कोई न था। बच्चे आए और माँ-बाप को हंसा-रुला कर चले गए। मिसेज हैमिल्टन भी एक साल कड़े जाड़े में उन्हें छोड़ कर चल दी। निमोनिया की कठिन पीड़ा के रूप में भगवान ने उन की परीक्षा ली और अपने प्रति उनके अटल विश्वास से प्रसन्न हो प्रेम से उन्हें अपनी गोद में बुला लिया।

हैमिल्टन साहब ने माथे पर हाथ मारा और फिर भगवान की इच्छा समझ, सिर हिलाकर रह गए। उन के मूक शोक को देखकर यमराज भी अपनी करनी पर पछताये होंगे परन्तु उन के यहाँ फ़ैसले पर फिर से नजर-सानी का क़ायदा नहीं, क्या करते ?

कुछ ही दिनों में हैमिल्टन साहब के गाल धँस गये। अनबहे आँसू आँखों के नीचे थैलियों के रूप में लटकने लगे। कनपटियों और गालों के बीच जाल पड़ गए। उनका बरसों का वफ़ादर चाँदी की कमानी का चश्मा भी दग़ा दे गया। दफ़्तर वे समय पर जरूर पहुँच जाते परन्तु मिसल के बजाय स्याही चूस पर दस्तख़त कर बैठते। क्लर्कों के लिये जरूरी हिदायत बड़े साहब की फाइल पर और बड़े साहब के कागज की बात क्लर्कों को भेज देते।

बड़े साहब के दिल में उन के लिए दरद था। उन्होंने समझाया - "सारी उम्र की कमाई पर पानी फेरने से क्या लाभ ? तुम्हारी आँखों और दिमाग़ को आराम की जरूरत है। तुम्हारी पेन्शन में सिर्फ़ एक साल बाक़ी है। तुम पेन्शन की तैय्यारी की छुट्टी लेकर किसी एकान्त और ठण्डे स्थान पर जाकर विश्राम करो ! "

इस नसीहत से मजबूर हो अक्टूबर के अन्त में, जब सब लोग पहाड़ों से मैदानों की ओर लौट रहे थे, हैमिल्टन साहब मसूरी आ पहुंचे। बंगलों और कोठियों के एक दलाल ने गरमी के मौसम का किराया उन से वसूल कर, जाड़े भर के लिए मकान उन के लिए ठीक कर दिया। एक बेकार खानसामे ने उनके भोजन की कठिन जिम्मेवारी मामूली तनख्वाह पर अपने सिर ले ली। गरीब हमदर्द खानसामा गोश्त की तरी और शोरबा कटोरी में खुद पीकर, प्लेट में बोटियाँ और हड्डियां साहब को परोस, अपना कर्तव्य निबाहने लगा।

हैमिल्टन साहब सन् चौदह से पहले का सिला अपना ऊनी सूट पहने कोट की दोनों जेबों में हाथ डाले, कोहनियाँ पसलियों से चिपकाये, कानों तक ऊनी टोपी खींचे, उजड़ी मसूरी की बियाबान सड़कों पर घूम आते। वहाँ न कोई उन्हें सलाम करने वाला था, न सहानुभूति प्रकट करने वाला। उन सूनी सड़कों पर अगर कभी कोई दिखाई पड़ता तो पेंशनिया साहब का सौदा लाने वाले खानसामे या अंग्रेज़ी स्कूलों के पढ़ाई से भागे हुए लड़के।

हैमिल्टन साहब की धुँधली और उत्सुक आँखें राह चलने वालों की ओर उठ जातीं परन्तु किसी को उनसे मतलब न था। बन्द दुकानें, वीरान मकान, रूखे नंगे पहाड़, सूखी हुई फुलवाड़ियाँ, पत्ते झड़े हुए, रूखे नंगे वृक्ष, कठोर स्वर में पुकारते हुए पहाड़ी कौए, हड्डियों को सुन्न कर देने वाली सांय-सांय करती वायु, आंखें चोंधिया देने वाला निस्तेज सूर्य —इसके सिवा कुछ नहीं। सड़कों और बाजारों को कई-कई दफ़े नाप लेने के बाद भी जब उन्हें पुकारने वाला कोई न मिला तो उन्होंने 'किनक्रेग' की दुरूह चढ़ाई और उतराई को नित्य नापना शुरू किया। किनक्रेग मसूरी में आने-जाने वाली मोटरों का अड्डा है। वहां तो किसी न किसी दिन कोई न कोई उन्हें पहचानेगा ही।

दिसम्बर के तीन सप्ताह भी बीत गए। हैमिल्टन साहब दोपहर के भोजन से पहले माल, कुलड़ी और लण्ढौर बाजार की परिक्रमा कर दोपहर के बाद 'किनक्रेग' उतर आते। एक बैंच पर बैठ वे आने और जाने वाली प्रत्येक मोटर की ओर आँखें उठाकर देखते —परन्तु कोई नहीं।

इतना बड़ा इलाहाबाद शहर, लाखों की बस्ती और एक भी आदमी मसूरी आने का नाम नहीं लेता। ज्यों-ज्यों सूर्य की दिशा बदलने से किनक्रेग में धूप घूमती जाती, वे अपनी बैठने या खड़े होने की जगह भी बदलते जाते। कोई मोटर वाला भ्रम से उन्हें सवारी नहीं समझता, कोई कुली उनका असबाब ढोने की आशा नहीं करता और न रिक्शा वाले ही उन्हें पुकारते। मानो वे भी किनक्रेग के फाटक और टीन के मकानों की तरह किनक्रेग के एक भाग हैं। किनक्रेग से धूप निकल जाने के बाद ज्यों-ज्यों अस्ताचल की ओर जाते हुए सूर्य की किरणें पहाड़ों की चोटियों की ओर सिमटने लगतीं, हैमिल्टन साहब के कदम भी चढ़ाई की ओर उठने लगते परन्तु सूर्य की किरणें भी उन्हें मार्ग में छोड़ जातीं।

× × ×

लिली से ब्याह करने के अरमान को जोन्स तीन बरस से दिल में पीस रहा था। उसकी महात्वाकांक्षा भी कम न थी। लिली थी, रेलवे दफ्तर में छोटे साहब की टाइपिस्ट और जोन्स वर्कशाप में एक मामूली फिटर। माना लिली उसे प्यार करती थी; परन्तु सामाजिक स्थिति भी तो कोई चीज है, जो हाथ से काम करने वालों को सदा करुणा और घृणा की दृष्टि से देखती है।

आखिर उस वर्ष अक्टूबर में एक परीक्षा पास कर जोन्स शिफ्ट इंजीनियर बन गया। तनख्वाह भी उसकी बढ़ी, सो अलग; इसके साथ ही वह मिस्त्री के मामूली पद से कूद कर इंजीनियर के खिताब का हकदार हो गया। पद की वृद्धि से सम्मान का अधिकार भी उसे प्राप्त हो गया।

जोन्स ने दिसम्बर में बड़े दिन के शुभ पर्व पर छुट्टी का प्रबन्ध पहले से ही कर लिया था। लिली का दफ्तर बड़े दिनों में यों ही बन्द रहता था। २० दिसम्बर को हिन्दुस्तानी गिरजे में उन का विवाह हो गया। उसी शाम जोन्स ने अपनी तीन बरस की कमाई जेब में डाली। ह्विस्की की एक बोतल और शादी के फूल दाईं बगल में और बाईं बगल में लिली को ले वह अपना 'हनीमून' (मधुयामिनी, सुहागरात) मनाने मसूरी के लिए गाड़ी पर चढ़ गया।

मसूरी में युगल जोड़ी का स्वागत करने वाला कोई न था। उन्हें इस की जरूरत भी न थी। उन्हें जरूरत थी एकान्त की। उन के नेत्र एक दूसरे की छवि से भरपूर थे। गैर सामने पड़ जाने पर भी उन्हें दीखते न थे। दीखते भी थे तो यों ही, आकिंचन निरर्थक आकृतियों की भांति।

दोपहर बाद की लारी से जिस समय प्रेमी युगल किनक्रेग में मोटर से उतरे, उन्हें किसी की प्रतीक्षा न थी। उनका अपना कलरव और कूजन उन के कानों के लिए काफी था। कुली के सिर असबाब लदवा, एक-एक हाथ में ब्याह के फूल और दूसरी बाँह एक दूसरे की कमर में डाले वे होटल पहुंचने के लिए चढ़ाई पर चलने लगे। अपने चारों ओर के जड़-चेतन संसार से वे सर्वथा निरपेक्ष थे। जोन्स प्रत्येक वाक्य में तीन बार 'माई लव' (मेरी जान) कहता और लिली 'माई डार्लिंग' (मेरे प्यारे) कह कर उत्तर देती।

उनके उत्साह, उमंग और कलरव ने किसी का ध्यान आकर्षित न किया हो परन्तु हैमिल्टन की चिर-प्रतीक्षित आँखों से वह बच न सका। पिछले

दो-अढ़ाई मास में एक ही चीज उनके ध्यान में आई थी और वह था इस नव-दम्पति का आह्लाद ! वे कौतूहल से उन की ओर देखने लगे और देखते देखते प्रेमी युगल के पीछे चलने लगे। नव-दम्पति की लटपटी चाल और बूढ़े के लड़खड़ाते कदमों में विशेष अन्तर न था। वे अपने में मस्त और यह उन में मस्त चले जा रहे थे।

नव-दम्पति के इस उल्लास ने बूढ़े हैमिल्टन के सोये हुए मस्तिष्क की शिराओं को सचेत कर दिया। तीस वर्ष पूर्व की एक स्मृति ताजी हो गई, जब वे मिसेज रोज-हैमिल्टन की बांह में बांह डाल कर, दूसरे हाथ में फूलों का गुलदस्ता लिए, गिरजाघर से लौटे थे·······

रोज !·······जवानी की वसन्त में फूटती हुई कली। उभरे-उभरे गाल, कटहल के कोए सी बड़ी-बड़ी सफेद आँखें, जिनमें प्रेम के नशे ने गुलाबी डोरे डाल दिये थे। उस का वह उज्ज्वल ताँबे का सा प्यारा रंग जिस में ललाई फूटी पड़ती थी। उस का स्वस्थ गदबदा शरीर, हैमिल्टन को इस समय भी अपनी आंखों के सामने दिखाई दे रहा था। सामने जाती हुई बेखबर पुलकित जोड़ी में उन्हें स्वयं अपना और रोज का तीस वर्ष पूर्व का जीवन दिखाई दे रहा था। उस स्मृति ने उनके शिथिल कदमों में स्फूर्ति पैदा कर दी। पुनः जाग उठे, सम्मुख जाते हुए अपने यौवन के चित्र को वे अपनी आँखों से ओझल नहीं होने देना चाहते थे। वे नव-दम्पति के पीछे-पीछे उनके होटल तक पहुंच गये।

जब नव-दम्पति असबाब कमरे में छोड़, अस्त होते सूर्य का दृश्य देखते हुए चाय पीने के लिए होटल की दूसरी मंजिल के बरामदे में बैठे, तब भी हैमिल्टन की धुंधली दृष्टि उसी ओर थी। उन की निर्बल आँखों के लिए कनखियों से देखना सम्भव न था इसलिए वे घूर-घूर कर देखने का यत्न कर रहे थे। जब चाय के बाद लिली क्लैरियानेट बजाने लगी और जोन्स नारंगी खाने लगा, तब भी हैमिल्टन धुंधले प्रकाश में अपनी धुंधली दृष्टि को उन के उल्लास के दृश्य तक पहुंचाने का यत्न कर रहे थे। लिली और जोन्स आत्म-लीन और आत्म-तुष्ट थे। संसार की ओर उन का ध्यान न था परन्तु हैमिल्टन का जिद कर घूरना उन के ध्यान से भी न बच सका। लिली ने जोन्स से शिकायत की—"यह कौन बेहूदा हमें घूर रहा है ?"

"होगा कोई''' माँगने वाला होगा।" जोन्स बेपरवाही से बोला। कुछ मिनट और गुजर गये। लिली ने फिर कहा, "देखो तो, यह तो बुरी तरह घूर रहा है।"

"ऊंह, कोई पागल होगा।"—जोन्स ने उत्तर दिया, और साथ ही पागल के पागलपन से दिल बहलाने के लिए हैमिल्टन पर नारंगी के छिलके फेंकने लगा।

आस-पास गिरते हुए वे छिलके हैमिल्टन की दृष्टि में न पड़ सके और यदि वे उन्हें देख पाते तो शायद प्रेम के फूल समझ कर उन्हें चूम लेते। कितनी ही देर तक लिली और जोन्स हैमिल्टन पर नारंगी के छिलकों से असफल चाँदमारी करते रहे। उनकी वह पुलक भरी किलकारियाँ हैमिल्टन को सन्तोष दे रही थीं। उन के तीस वर्ष पूर्व के जीवन के चित्र के रंगों को और भी चोखा कर रही थीं।

जब सर्दी और अन्धकार ने लिली और जोन्स को उनके विवाहित जीवन के अवसर की बात याद दिलाई और वे बन्द किवाड़ों की ओट लोप हो गये, तब हैमिल्टन भी उत्साह के पुनरुत्थान को हृदय में लिए रात बिताने अपने बसेरे की ओर लौटे।

ढीली खाट पर पड़े हैमिल्टन सोच रहे थे, कल बड़े दिन का शुभ पर्व है। तीस वर्ष पूर्व उन्हों ने रोज के लिए बड़े दिन का उपहार खरीदा था और फिर तीस वर्ष तक लगातार वे बड़े दिन का उपहार खरीदते रहे तो इस वर्ष वे क्यों न खरीदेंगे?

तीस वर्षों में आयु बढ़ने के साथ-साथ रोज के रूप का परिवर्तन उन की आँखों के सामने आने लगा परन्तु तब भी तो उपहार खरीदा ही गया था। फिर रोज का उन्हें छोड़ जाना ....मसूरी के एकान्त में शान्ति और विश्राम की खोज..........और फिर यह नव-दम्पति.......!

तीस वर्ष पूर्व की रोज एक बार फिर स्फुटोन्मुख ताजी कली की तरह, जिसकी पंखुड़ियाँ अभी पूरी-पूरी न खिल पाने से अपने हृदय को प्रकट नहीं कर पातीं, उनके सामने आ खड़ी हुई। करवटें बदलते रात गुजर गई। सुबह उठ, जाड़े में भी खुली रहने वाली लण्ढौर के देशी बाजार की दुकानों से बड़े

दिन का उपहार, एक बढ़िया शाल खरीद बगल में दबाये, बिना कुछ सोचे समझे, वे उसी होटल की ओर लपके चले जा रहे थे।

परन्तु यौवन की पूजा का वह अर्घ्य देवता के चरणों तक पहुंचे किस प्रकार ? जोन्स और लिली सुबह की धूप में बैठे दुनिया को भूल रहे थे। यहाँ तक कि गिरिजा घर के घण्टे की थर्राती हुई गम्भीर पुकार भी उन्हें सचेत करने में असमर्थ थी। जोन्स कभी ह्विस्की के गिलास से और कभी उस से भी मादक, लिली के होंठों से मद के घूंट भर रहा था और लिली कभी टाफी (अंग्रेजी मिठाई) का और कभी जोन्स के ओंठों का रस ले रही थी। उन्हें दुनिया की परवाह न थी और न किसी का दखल मन्जूर था।

लिली ने मुंह बना कर कहा—"डार्लिंग यह देखो, कल वाला पागल आज फिर घूम रहा है।"

जोन्स ने उस पागल को भगाने के लिए ताली बजाकर शोर किया—"हुश ! हुश !"

इस पर भी जब पागल को होश न आया तो जोन्स ने टाफी लेकर मजाक से पागल पर चाँदमारी शुरू की। जोन्स पूरी शक्ति से टाफी मार रहा था परन्तु कागज में लिपटी रहने के कारण हल्की टाफी हवा में उड़-उड़ा जाती। इस खेल से लिली किल-किलाकर हंस रही थी। प्रेयसी के सम्मुख निशाना चूक, जोन्स का मजाक क्रोध में बदला जा रहा था। पड़ोस के होटलों के चौकीदार और बहरे नीचे घाम सेंकते हुए, नशे में मस्त काले साहब और पागल का खेल देख-देख कर हंस रहे थे।

हैमिल्टन सोच रहे थे, ऊंची डाल पर टहकती कलियों की उस जोड़ी तक, प्रेम कूजन करते हुए पक्षियों के उस जोड़े तक उन का उपहार किस तरह पहुंचे ?

जब टाफी समाप्त हो गई तब असफलता की उत्तेजना में जोन्स ने टाफी का खाली डिब्बा उठाकर पागल पर फेंका। अपने वजन के कारण हवा को चीरता वह डिब्बा ठन से पागल के सिर पर आ गिरा और पागल बेखबर हो जमीन पर गिर पड़ा।

काले मेम और साहब की यह गुस्ताखी कहाँ तक बर्दाश्त की जा सकती

थी ? लोगों ने शोर मचा दिया। चौराहे पर धूप सेंकता सिपाही सरक कर होटल तक आ पहुँचा। लोग काले साहब को शरारत का मजा चखाने के लिये उतावले हो रहे थे। धमकियों के उस शोर में जोन्स के होश ठिकाने आ गये। दुमंजिले के बरामदे से उसे जमीन पर उतरना पड़ा और उसके पीछे-पीछे लिली हाँफती हुई उसकी रक्षा करने के लिये आई।

हैमिल्टन के पृथ्वी पर लेटे हुए शरीर को घेर कर शिकायत और धमकियों का शोरगुल हो रहा था। जोन्स और लिलि घबरा कर पागल के चेहरे की ओर देख रहे थे। उस के शरीर पर भले आदमियों जैसे कोट-पतलून होने से स्थिति और गम्भीर हो रही थी।

कुछ देर में पागल ने करवट बदली, आंखें झपकीं और खोल दीं। लोगों को अपने चारों ओर खड़े देख वह विस्मित हो गया।

टाफ़ी का खाली डिब्बा पागल को दिखा कर पुलिस कान्स्टेबल ने पूछा—"तुम को साहब ने मारा ?"

पागल आस-पास खड़े लोगों के चेहरों की ओर देख परिस्थिति समझने की कोशिश कर रहा था। उसे होश में लाने के लिये कान्स्टेबल ने उस के कोट-पतलून और टोपी के आदर से फिर प्रश्न किया—"साहब, आप इधर क्यों आया ?"

इस प्रश्न से पागल बगल के पैकेट को संभालते हुए उठ खड़ा हुआ। सामने बांह में बाँह डाले खड़े नव-दम्पत्ति की ओर देख, उन्हें पहचान सलाम कर वह बोला—"बड़ा दिन मुबारक !……… यह बड़े दिन का उपहार आपके लिये………!"

पागल की सहायता के लिये इकट्ठे होने वाले सहृदयों के लिये निराश होकर टल जाने के सिवा चारा न था।

चार

दूसरी नाक

लड़के पर जवानी आती देख जब्बार के बाप ने पड़ोस के गाँव में एक लड़की तजवीज कर ली। लेकिन जब्बार ने हस्बा की लड़की शब्बू को जोर पानी भर कर लौटते देखा तो उस की सुधबुध जाती रही।

जैसे कथा-कहानी में कहा जाता है कि कोई शाहज़ादा नदी में बहता सोने का एक बाल देख सुनहले केशवाली सुन्दरी के प्रेम से आहत महल की अटारी में उपवास कर लेट गया था; बहुत कुछ वैसा ही हाल जब्बार का भी हुआ। मुंह से तो कुछ कह न सका पर शिथिल, चेहरे का रङ्ग उड़ा हुआ, कुछ खोया-खोया सा वह रहने लगा।

मां-बाप ने उसकी हालत देखकर सलाह की। मुंह-दर-मुंह नहीं पर उसे सुना दिया कि उस का ब्याह जल्दी ही हो जायगा। लड़की भी बच्चा नहीं, बिलकुल जवान है। शमसल की बड़ी बेटी जहुरा आस-पास के चार गांवों में एक ही लड़की है। पानी का बड़ा मटका सिर पर उठा कर चलती है तो जैसे धरती हिलने लगे। घर भर का काम सँभालती है अभी से! घर में आ जायगी तो जब्बार की मां को भी चैन मिलेग; बूढ़ी हो गई बेचारी। पर जब्बार को इस से कुछ तसल्ली न हुई। वह अक्सर लम्बी-लम्बी आहें खींचता चुपचाप पड़ा रहता।

एक रोज मां ने आंखों में आँसू भर अपनी कसम धराकर पूछा तो उस ने सच कह दिया। जहुरा की बात सुनने से भी इनकार कर वह बोला—"या तो हस्बा की बेटी शब्बू, नहीं तो बस!.......कुछ न ीं।"

माँ-बाप ने बहुत समझाया। उसे सुनता देखते तो आपस में जहुग्रा की तारीफ़ और शब्बू की निन्दा करने लगते।......और जो लोग ऐसी बेशर्मी से ब्याह करते हैं, उन की कितनी निन्दा होती है, यह सब वे लड़के को काकोक्ति, अलंकार और रूपक द्वारा समझाकर हार गए पर धुन का पक्का जब्बार न माना तो न माना।

बेटे की जिद्द से हार मान बूढ़ा गफ़्फ़ार एक रोज हस्वा से बात करने गया। जब वह लौट कर आया तो क्रोध से उसकी आँखें लाल और चेहरा ग्लानि से विरूप हो रहा था। बन्दूक कोने में रख, कन्धे की चादर जमीन पर फेंक वह जमीन पर ही बैठ गया।

जब्बार की माँ ऊँटों को बेरी की पत्तियाँ खिला रही थी। तुरन्त बूढ़े के समीप दौड़ी आई। जब्बार दूर से ही उत्सुक कान लगाए था। बूढ़ा मानो फट पड़ा—ऐसे नालायक बेटे की बलायें अपने सिर लेते हुए नाक पर हाथ रख कर पूछा—"हाय-हाय! हुआ क्या?"

बूढ़े ने कहा—"होगा क्या? ऐसे बेशरम, बेग़ैरत लड़के से और होगा क्या? तमाम इज्जत खाक में मिल गई और घर मिट्टी में मिल जायगा।"

माँ ने फिर बलायें लेकर पूछा—"हाय, हुआ क्या? ऐसा क्यों कहते हो?"

बाप बोला—"अगर इस के ऐसे ही मिजाज थे तो यह कलात के खान के यहाँ क्यों पैदा नहीं हुआ? जानती है, हस्वा ने क्या कहा? सीधे मुँह से बात नहीं की। मुँह फेर कर बोली, शब्बू की बात तुम मत सोचो। उसे वह ब्याहेगा जो अढ़ाई सौ रुपये की गठरी बांध कर लाएगा!"

अढ़ाई सौ रुपये की बात सुन जब्बार की माँ की आँखें ऊपर चढ़ गईं। बूढ़ा बोला—"तू भी बूढ़ी हो गई। तू ही बता, तूने कभी ऐसा तूफान सुना है अपनी उमर में?...अढ़ाई सौ रुपये! कोई चीज ही नहीं होती?"

कासमसल से मैंने जहुग्रा के लिए बात की थी। उस ने लड़की के अस्सी माँगे थे, आखिर साठ पर तैयार है। उनके लड़की भी एक आदमी है और वह बदजात माँगता है, अढ़ाई सौ। अरे तू बूढ़ी हो गई, तू ही बता, रंग जरा मैला हुआ तो क्या, साफ़ हुआ तो क्या? औरत, औरत सब एक। तुझे अपने काम से मतलब कि रंग से? अभी छः महीने नहीं हुए, इस के

लिए बन्दूक खरीदी थी तो वह ऊंट बेचा था। अढ़ाई सौ रुपये उमर में कमा तो पायेगा नहीं और शान यह है। अच्छा तू ही बता, इतनी बूढ़ी हुई, अढ़ाई सौ रुपये कभी औरत के दाम सुने हैं ?..........अढ़ाई सौ रुपये में तो फिरंगी की तोप खरीदी जाती है।"

जब्बार ने सुना और आह को सीने में दबाकर करवट बदल ली।

× × ×

एकलौते बेटे का दिन-रात बिसूरना माँ-बाप से देखा न गया। बूढ़े ने कहा—"मेरा क्या है ? पका फल हूँ, कब टपक पड़ूं ? जो कुछ है इसी के लिए है। रोटी का सहारा ये दो ऊँट हैं, ये भी जायेंगे तो फिर खुद ही फिरंगियों की सड़क पर रोड़ी कूटने की मजदूरी करेगा। लोग यही कहेंगे कि गफ्फ़ार का बेटा मजदूरी करने लगा, सो इस की क़िस्मत ! मैं क्या सदा बैठा रहूँगा ?"

आखिर दोनों ऊँट बन्नू के बाजार में बिक गए और शब्बू जब्बार की बहू बन उस के घर आ गई।

शब्बू को इस बात का कम गर्व नहीं था कि उसकी कीमत गिन कर अढ़ाई सौ रुपए चुकाई गई है। पानी भरने जाती तो आधा ही घड़ा लेकर लौटती, वह भी लचकती, बल खाती। पड़ोस की मीरन ने समझाया—"ऐसा नखरा ठीक नहीं। मर्दों को काम प्यारा होता है। किसी रोज ऐसी मार पड़ेगी कि कमर सदा को लचक जायेगी।"

अपनी कान तक फैली आँखें मटका और हाथ का अँगूठा दिखा कर शब्बू ने कहा—"ओहो ! मेरे बाप ने बारह बीसे और दस रुपये गिन कर मुझे मार खाने को ही तो यहाँ भेजा है ? कोई मुझे हाथ तो लगाए ? तेरे मर्द ने तीन बीसे में तुझे लिया है।''''लंगड़ी लूली हो जायेगी तो एक और सही।"

गजब की शोख़ और शौकीन थी शब्बू ! वह काले मखमल की वास्कट पहनती जिस की सिलाइयों पर सीप के तीन बटन टँके थे। अपने बालों में मक्खन लगाती और बाहर जाने से पहले पानी का हाथ लगा कर पट्टियाँ संवार लेती। महीने में दो-दो बार सिर धोती।

जब्बार की मां यह सब देखती और नाक पर हाथ रख पड़ोसिनों से कहती —"देखो तो, अढ़ाई सौ रुपये देकर ब्याह किया पर मुझे क्या आराम मिला ?.........इसे तो अपने नखरों से ही छुट्टी नहीं।"

× × ×

बूढ़े ने बेटे को समझाया—"तेरी जवानी की उमर है। अब कुछ कमाई नहीं करेगा तो कैसे निबाह होगा। यों घर बैठा रहना क्या तुझे सुहाता है ? रोजी का एक जरिया मेरे ऊँट थे, सो तेरे ब्याह में खप गए। अब भी तू कुछ नहीं करेगा तो क्या मैं परदेस जाकर मजदूरी करूँगा ?"

मन मार कर जब्बार को कमाई करने बन्नू जाना पड़ा लेकिन मन उसका गांव मे ही रहता। पूरा सप्ताह जब्बार को बन्नू गए नहीं हुआ था कि वह शब्बू की याद से बेकल हो एक दिन आधी रात में उठ अपने गांव को चल दिया।

सोलह मील चलकर जब उसे ऊषा की अस्पष्ट लाल आभा में पहाड़ी पर अपने गांव की छतें दिखाई दीं तो वह ठिठक गया। अपने गांव की क्रुद्ध मूर्ति और पड़ोसियों की लांछना के विचार ने उस के पैरों में बेड़ियाँ डाल दीं। वह एक चट्टान पर बैठ अपने घर के दरवाजे की ओर देखने लगा। उसने सोचा, शब्बू पानी भरने निकलेगी तो तब एक आंख देख सकेगा। बावड़ी पर चल कर बैठूं, शब्बू पानी भरने आयेगी तो उस से दो बातें करके लौट जाऊंगा।

शब्बू पानी लेने आई तो दो सहेलियों के साथ। जब्बार तीस कदम पर एक पत्थर की ओट में बैठा धड़कते हुए दिल से देखता रहा पर एक शब्द बोल न सका। बोलता कैसे ? वह दोनों पड़ोसिनें बदनाम कर देतीं। जब्बार दिल पर पत्थर रखे देखता रहा, शब्बू सहेलियों से चुहल करती, मटकती लौट गई। जब्बार आहें भरता बन्नू लौट गया।

जब्बार के विरह की आग में ईर्षा का घी पड़ गया। उस ने सोचा देखो, मैं यहाँ परदेस में अकेला मर रहा हूं और वह मौज करती है। उसे मेरा जरा भी गम नहीं। औरत की जात में वफा नहीं होती।

आठ-दस दिन बाद वह फिर रातों-रात सफर कर शब्बू को एक पलक देख सकने और एक चुम्बन पा सकने की आशा में गांव की बावली पर आकर बैठ गया परन्तु शब्बू अकेली नहीं आई। पड़ोस की तीन सहेलियों के साथ अठखेलियाँ करती आई। जब्बार उन की बात को कान लगा कर सुन रहा था।

मीरन ने शब्बू की ठोड़ी छू कर कहा—"हाय रे तेरा नखरा! तभी तो गांव के छैले तुझ पर जान दे रहे हैं, कसम तेरे सिर की!"

शब्बू के चेहरे पर गर्व से सरूर छा गया। वे पानी लेकर लौट गईं। जब्बार की छाती पर मानो सौ मन का पत्थर आ गिरा, पर बेबस था।

उस के मन मे सन्देह का अंकुर और जमा। सन्देह मनुष्य के हृदय में आकाश बेल की तरह बढ़ता है। उस के लिए जड़ या बुनियाद की भी जरूरत नहीं। वह कल्पना के आकाश में ही पुष्ट होता है। सन्देह को निश्चय का रूप लेते भी देर नहीं लगती।

गांव में ऐसे कई लौंडे-लुगाड़ थे जिन्हें फितूर के सिवा दूसरा काम न था। रहमान और अब्बास से हर बात की आशा की जा सकती थी और फिर यदि कुछ दाल में काला नहीं है तो मीरन ऐसी चर्चा क्यों कर रही थी?........और शब्बू की यह चटक-मटक किस के लिए है? देखो, उसे मेरा गम जरा भी नहीं और मैं मरा जा रहा हूं। जब्बार लहू के घूंट पी-पी कर रह जाता।

उसने सोचा, रुपया कमाने के लिए ही तो वह घर से दूर यहाँ पड़ा है। यों आठ दस-आने रोज में रुपया नहीं कमाया जा सकता। घर लौटने की आग ने उसे बावला कर दिया। एक दिन मौका देख उस ने एक हाथ मार ही दिया। किस्मत अच्छी थी। वह पकड़ा भी नहीं गया और डेढ़ सौ रुपया कमा कर डेढ़ महीने में घर लौट आया। जब्बार के बाप को हौसला हो गया, बेटा भूखा नहीं मरेगा।

जैसे नील का दाग कपड़े को नहीं छोड़ता वैसे ही जिस मन में सन्देह एक बार प्रवेश कर जाता है, उसे छोड़ता नहीं। जब्बार ने शब्बू से पूछा—"क्यों, जब मैं बम्बू में था तो खूब मजे उड़ते थे?"

शब्बू भी निरी मजदूरिन न थी। चमक कर उसने पूछा—"कैसे मजे ? किस से मजे उड़ते थे ?"

जब्बार ने पूछा—"क्यों, गांव में क्या कम आदमी हैं ? रहमान है, अब्बास है। खूब बनाव-सिंगार से पानी लेने जाना होता था, क्यों ?"

शब्बू फुंकार कर बोली—"मैंने कभी किसी मरे की तरफ आँख उठा कर देखा हो तो मैं मर जाउँ, नहीं मुझ पर झूठा इलजाम लगाने वाला मर जाय !"

जब्बार ने तड़प कर पूछा—"तू बन-ठन कर अपना हुसन दिखाने नहीं जाती थी ?"

शब्बू ने उत्तर दिया—"मैं क्यों जाउँगी दिखाने किसी को ?....लोग मरे घूरा करें तो मेरा क्या कसूर ?"

जब्बार ने चुटिया कर पूछा—"तो तू यों बन-ठन कर दिखाने को निकलती क्यों है ?"

अपने सौन्दर्य के अभिमान से शब्बू का सिर ऊंचा हो गया—"मैं क्या करती हूँ ?....क्या मुंह काला कर लूं ? मैं जैसी हूं, वैसी हूं।"

जब्बार बड़े यत्न से शब्बू की चौकसी करने लगा। वह शब्बू से सौ कदम दूर भी आदमी देख पाता तो उसे यही सन्देह होता कि वह उस से आँख लड़ा रहा है। कुछ दिन में उसका खाना-पीना हराम हो गया। किसी मुसाफिर को गाँव से गुजरते देख कर भी उसे यह शंका होती कि सम्भव है शब्बू के रूप की ख्याति सुन कर ही यह आदमी बहाने से इधर आया है। सारा गांव उसे शब्बू के पीछे पागल दिखाई पड़ने लगा।

एक रात जब्बार ने शब्बू से पूछा—"आज तू बाहर से लौट रही थी तब राह में मुस्करा क्यों रही थी ?"

उत्तर में शब्बू ने पूछा—"मैं कहाँ मुस्करा रही थी ?"

जब्बार ने पूछा—"और वे सब आदमी खड़े क्यों देख रहे थे ?"

अपने रूप की महिमा के संकेत से पुलकित होकर शब्बू ने उपेक्षा से उत्तर दिया—"मैं क्या जानूं ?"

होंठ काट कर जब्बार ने धमकाया—"बहुत घमण्ड होगा हुसन का ! ·········नाक काट लूंगा ?"

शब्बू का मन गुदगुदा उठा, बोली—"बारह बीसे और दस रुपये की नाक है !" और मुस्करा दी ।

शब्बू सो गई परन्तु जब्बार की आँखों में नींद कहाँ । उसने पुकारा—"सुन तो" उत्तर नदारद ।

जब्बार जल गया, देखो तो इसका घमण्ड !·········मैं बेचैन पड़ा हूं और यह मजे में सो रही है । यह सब हुसन का घमण्ड है । इसी हुसन के पीछे गाँव के बदमाश पागल हैं । मेरी क्या आबरू है, जिस की औरत को सब घूरें ? अगर यह हुसन न होता तो क्या मेरी आबरू यों मिट्टी में मिलती ? ····ऐसे हुसन से क्या फायदा ?"

जब्बार ने इस समस्या पर गम्भीरता से विचार कर सोचा·········आबरू और चैन कहाँ मिल सकता है !

रात के सन्नाटे में जो विचार उठते हैं, बहुत उग्र होते हैं । दिन की तरह उस समय विचारों को रोकने वाली सैकड़ों उलझनें नहीं रहतीं इसीलिए भक्त रात में समाधि लगाते हैं, कातिल क़तल रात में करते हैं और चोर चोरी रात में करते हैं, विरही भी रात में ही पागल हो उठते हैं ।

जब्बार अंधेरे में आँख खोले शब्बू के रूप के कारण होने वाले सब अनर्थ पर विचार कर रहा था । वह अनर्थ उसे अनन्त जान पड़ा । उसे सहन करना असम्भव था । उस ने सिरहाने से पैना छुरा उठाया और अंधेरे में टटोल कर शब्बू की नाक पकड़ ली । एक ही झटके में नाक काट कर उस ने फेंक दी ।

शब्बू चीख उठी । जब्बार की माँ उठकर दौड़ी । रोशनी जलाई गई । पड़ोस के लोग दौड़ आये । जब्बार का बाप गुस्से में गालियाँ दे रहा था और दूसरे लोग इलाज बता रहे थे । एक बुढ़िया ने चिल्ला कर कहा—"अरे कोई जल्दी से भेड़-बकरी का ताजा, गरम-गरम, जिन्दा गोश्त का टुकड़ा काटकर नाक पर रखो नहीं तो लड़की मर जायगी !"

जब्बार की माँ ने घबराकर कहा—"इस वक्त भेड़-बकरी कहाँ !"

"तो तुम जानो ।" बुढ़िया ने उत्तर दिया ।

जब्बार खड़ा सुन रहा था। शब्बू की नाक उसने इसलिए काटी थी कि वह केवल उसी की होकर रहे। दूसरों की आँख उस पर पड़ना उसे सह्य न था। वह शब्बू को केवल अपने ही लिए रखना चाहता था। दूसरे की आँख उस पर पड़ने से उसके दिल पर घाव लगता था। उसके मर जाने की सम्भावना सुन उस का दिल दहल गया।

जिन्दा गरम गोश्त नहीं मिलेगा तो········ ? उस ने वही पैना छुरा उठाया और अपनी जाँघ से जिन्दा गरम गोश्त का टुकड़ा काट कर शब्बू की नाक पर धर दिया। जब्बार के माँ और बाप बिलकुल पागल और दूसरे लोग हैरान रह गये।

×   ×   ×

शब्बू चेहरे पर घाव के दर्द के मारे खाट पर पड़ी कराहती रहती और जब्बार जाँघ में पट्टी बाँधे खाट की पटिया पर बैठा शब्बू के चेहरे पर से मक्खियाँ हांका करता। जख्म के कारण शब्बू का तमाम चेहरा सूज गया। पानी का घूंट तक निगलना उस के लिए दूभर हो गया, तिस पर बुखार ! यह हालत देखी तो जब्बार ने उस का इलाज बन्नू के फिरंगी डाक्टर वाले हस्पताल में कराने का निश्चय किया। स्वयं बड़ी कठिनाई से वह चल पाता था परन्तु एक रात जब सब लोग सो रहे थे, उस ने शब्बू को कन्धे पर उठा लिया और बगल में लाठी ले वह बन्नू के लिए चल पड़ा।

वह कुछ दूर चलता और दम ले लेता। कपड़ा भिगोकर पानी की बूंदें शब्बू के मुंह में टपकाता जाता। तीसरे दिन वे लोग बन्नू के हस्पताल में पहुँच गये। बीस रोज में शब्बू का जख्म भर पाया और उस की तबीयत ठिकाने आई।

×   ×   ×

नाक न रहने पर हवा होठों की अपेक्षा नाक के छेद से अधिक निकल जाती है और स्वर बिलकुल नक्की हो जाता है। उसी स्वर में मिनमिना कर शब्बू बोली—"डाक्टर मेम साहब कहती हैं, विलायत से रबड़ की नाक मँगा देंगी।"

जब्बार ने घबराकर उत्तर दिया—"बस रहने दे हमें नाक नहीं चाहिए। मुझे तू बिना नाक के ही भली लगती है। तुझे क्या नाक औरों को दिखानी है?"

शब्बू उदास हो गई। उसने खाना खाने से इनकार कर दिया। जब्बार के लिए बड़ी भयंकर समस्या आ पड़ी। उसने सोचा, बुरा हो इस मेम का। मैंने एक नाक काटी थी, वह दूसरी बनाने को तैयार है।

जब शब्बू ने दो दिन खाना नहीं खाया तो जब्बार ने रबड़ की नाक की कीमत चालीस रुपए डाक्टर के यहाँ जमा करा दी पर शर्त एक रही कि शब्बू नाक लगायेगी जरूर लेकिन ग़ैर मर्द अगर उसे घूरने लगे तो भट नाक उतार कर जेब में डाल लेगी।

पाँच

मोटरवाली-कोयलेवाली

अगहन मास में जो 'भागसू' जाकर रहेगा, वह या तो डाक्टर के आदेश से या फिर संसार से विरक्त होकर। वर्मा निश्चय ही दूसरे कारण से जाड़े में उजड़ी हुई भागसू की वस्ती में एक मकान लेकर रह रहा था। विरक्ति के लिये कारण भी कुछ कम न था।

वह वकालत की बे-मेहनत की पढ़ाई कर रहा था। किसी जरूरत से नहीं; यह ताऊ जी का आदेश था। वह अपने पिता की सन्तान था सही परन्तु सभी लोग उसे निस्सन्तान ताऊ का ही पुत्र समझते थे। बीस वर्ष हो गये, तभी सब लोग समझ गये थे कि लाला विहारीलाल की सम्पत्ति का उत्तराधिकारी वर्मा ही होगा। इसीलिये उन का पोषण-शिक्षण दूसरे भाइयों से कुछ भिन्न, जरा बड़े आदमियों के ढङ्ग से हुआ था।

लोग ग़लत नहीं कहते—'माया को माया मिले, कर-कर लम्बे हाथ।' वर्मा अभी गवर्मेण्ट कालिज के तीसरे वर्ष में पढ़ रहा था कि लाला भानामल ने वर्मा को रूपा के लिए वर चुन लिया।

रूपा 'गर्ल्स स्कूल' की नवीं श्रेणी में पढ़ती थी। वर्मा ने उसे देख भी लिया था। वह जब-तब गर्ल्स-स्कूल के मार्ग में, टाउनहाल के बाईं ओर के पेड़ों के नीचे, किताब लेकर टहलने लगता था। रूपा के मोटर के भोंपू की आवाज़ से वह परिचित था और मोटर का ड्राइवर वर्मा को देख कर सहानुभूति से हार्न बजा देता।

पुरानी कहावत है —'मछली को तैरना कोई नहीं सिखाता।' वैसे ही यौवन पाती कामिनी को प्रणय के पैंतरे सिखाने नहीं पड़ते; वे उन्हें प्रकृति-सिद्ध होते हैं। वर्मा को देखकर रूपा अपनी पतली सी देह मोटर के कोने में छिपा स्कूल की कापियों से आड़ कर केवल आँख भर की जगह बचा लेती। भले आदमी कहते हैं, संकोच शील का लक्षण है। इस बात का विरोध नहीं किया जा सकता; क्योंकि भले आदमियों की जमात से अपना नाम खारिज हो जाने का भय है। परन्तु इतना कह देने में कोई हरज न होगा कि संकोच प्रणय पर सान चढ़ाने का भी अच्छा उपाय है और फिर जैसे हाथ में टुकड़ा लेकर कुत्ते का दुम हिलाना देखने में अच्छा लगता है वैसे ही...... 'नारी' के लिए 'पुरुष' का व्याकुल होना ही 'नारी' के रूप और गुण की सफलता की कसौटी है। जिस नारी के लिए किसी पुरुष का हृदय चाह की आग में नहीं धधका, उसका नारीत्व बेकार है। रूपा को भी सन्तोष होता था।

शायद यह कहना भूल गये कि रूपा पिता की एकमात्र पुत्री थी। लाला भानामल ने रेल की पटरी बिछाने की ठेकेदारी में बहुत रुपया कमाया था। उन का विचार था कि योग्य वर से कन्या का विवाह कर सब कुछ उसे सौंप, उन्हें सब प्रकार की चिन्ता से मुक्त कर देंगे। उन्हों ने वर्मा को दो कारणों से योग्य वर माना था। एक तो वह लाल बिहारीलाल के अनेक पहाड़ी बंगलों और विदेशी कम्पनियों में उनके 'शेयरों' का भावी स्वामी था, दूसरे वह स्वस्थ और बुद्धिमान युवक था। सगाई की रस्म अदा कर वर्मा को रिज़र्व कर लेने की आवश्यकता लाला भानामल ने न समझी क्योंकि बड़े आदमियों के मुंह की बात ही पर्याप्त होती है।

रूपा स्कूल के मार्ग में स्कूल की कापी की आड़ कर वर्मा को जलाती थी परन्तु रूपा की माँ वैसी निठुर न थी। तीज-त्यौहार के दिन वे वर्मा को निमंत्रित करतीं। स्वयं अपने अध्यवसाय से थोड़ी पंजाबी (गुरमुखी) के अतिरिक्त वे कुछ पढ़ न पायी थीं इसलिए इकलौती प्यारी बेटी की अंग्रेज़ी विद्या का उन्हें अपरिमित गौरव था। निमंत्रण के कार्य-क्रम का अन्त प्रायः रूपा की किसी सीजनकारी या स्कूल की कापी का वर्मा को दिखा कर होता। अजाने में वे कभी ज्योमिट्री या भूगोल के नक्शों की ही कापी दिखा देतीं जिस में अंग्रेज़ी टाइप के मोटे-मोटे अक्षरों में, प्रत्येक पृष्ठ पर लिखा रहता— Roop Rani—रूपरानी। बेटे के अभाव में वे भावी जमाता को बुला

कर अपना लाड पूरा कर लेती । उस समय लजीली लड़की आंचल में मुख लपेट बिछौने पर जा लेटती और उसका हृदय मोटर साइकिल के इंजन की तरह फट-फट करने लगता ।

वर्मा ने अपने भविष्य जीवन के मनोरम चित्र तैयार किये थे । किसी मनोरम पहाड़ी स्थान में बंगला सजाकर रहेगा । उस मनोरम एकान्त में रूपा और वह । कितने मोहक और मादक थे वे चित्र !

जिस समय वह वकालत के पहले वर्ष में पढ रहा था और विवाह में केवल रूपा के एन्ट्रेंस की परीक्षा दे लेने मात्र का व्यवधान शेष रह गया था, वर्मा के ताऊजी को पचपन वर्ष की अवस्था में एक अच्छा मजाक सूझा । समाज-सुधार की मिसाल कायम करने के लिए उन्हों ने एक विधवा से विवाह कर लिया । उस 'पुनः सौभाग्य मण्डिता' ने भी आते ही एक वर्ष के भीतर ही लाला बिहारीलाल के लिए एक 'वंशधर' प्रसव कर दिया ।

आर्य समाजी पण्डित ने इस पुत्र का नाम वैदिक रीति से 'वंशधर' रख कर वर्मा के प्रति विधना की विडम्बना को पूर्ण कर दिया । इस नवागंतुक ने वर्मा के भाग्य को अपने निर्बल हाथों से समेटकर निगल लिया । वर्मा ने उस की विशेष चिन्ता न की । उसने बेपरवाही से कहा, ऐसी सम्मत्ति का वह भूखा नहीं । वास्तव में उसे रूपा के साथ ही मिलने वाली, लाला भाना-मल की सम्पत्ति का बहुत आसरा था लेकिन वर्मा के भाग्य के साथ ही साथ लाला भानामल का दिमाग भी फिर गया । हाल में विलायत से पास होकर आये, एक रियासत के दीवान के पुत्र के यहां रूपा का तिलक भेज उन्होंने विवाह का दिन भी निश्चित कर लिया ।

मन की ऐसी अवस्था में वकालत की परीक्षा की तैयारी करना वर्मा के लिए सम्भव न रहा । एक अत्यन्त दुरूह विरक्ति ने उस के मन को दबा लिया । एक भी शब्द उसने किसी के विरुद्ध नहीं कहा; बल्कि एक तरह से उसने मुंह खोलना ही छोड़ दिया । मन की ग्लानि और उदासीनता से पुत्र को बचाने के लिए वर्मा के पिता ने उसे घूम आने की अनुमति दे दी । इसी सिलसिले में वह भागसू में आकर रह रहा था ।

जाड़े के दिनों में भागसू की दुकानें प्रायः बन्द थीं और सड़कें सूनी । प्रायः, मध्यान्ह-संध्या किसी भी समय वह बाहर निकल पड़ता और सड़क के

किनारे किसी बड़े से पत्थर पर बैठा-बैठा घाम सेंकता रहता । कभी उस की दृष्टि वृक्षों की शाखाओं पर जहाँ-तहाँ फुदकते पक्षियों की ओर जाती और कभी ढलवान पर चरते हुए पशुओं की ओर । एक-एक, दो-दो कर आती-जाती, पीठ पर कोयलों की भारी कण्डी उठाये, पहाड़ी औरतों की ओर भी उस की नजर पड़ती । खच्चरों और पहाड़ी बैलों पर बोझ लादकर आने-जाने वाले लोगों पर भी उसकी आँख जाती परन्तु वह उखड़ी-उखड़ी, बहकी-बहकी मगर कुछ भी न देख पाती । कभी उस के हाथ का सिगरेट समाप्त होकर उस की ऊँगलियों को जलाने लगता, तब चौंक कर वह उसे फेंक देता और कभी एक कश खींच कर ही सिगरेट को नीचे गहरी ढलवान में चला देता । कभी-कभी कोयले वाली औरतों के साथ के बच्चे उस से कुछ दूरी पर खड़े होकर पैसा माँगने लगते । वह कुछ भी न सुनता और सुनता तो चौंककर ऊँचे स्वर में पूछता—"क्या ?" बच्चे घबरा कर दूर भाग जाते ।

एक दिन बादल घिर आये थे । हवा तीर की तरह चल रही थी । अपने मकान से कुछ कदम उतर वह सड़क के किनारे एक पुलिया की दीवार पर जा बैठा । नीचे बाजार में कोयले का बोझ बेच, उसके मूल्य से कुछ सौदा-सुलफ ले, नल पर मुंह-हाथ धोकर एक कोयलेवाली लौट रही थी । छः-सात बरस का एक छोकरा उसके आगे-आगे चल रहा था । छोकरा एक हाथ से सिर पर एक छोटी सी पोटली सम्भाले था । वर्मा के सम्मुख खड़े हो लड़के ने पुकारा —"पैसा !"

वर्मा ने सुना और पूछा —"क्या ?"

भीरू लड़का सहमकर साथ की जवान लड़की की कमर से लिपट गया । लड़की ने मुस्कराकर निस्संकोच दृष्टि वर्मा की आँखों में डाल, लड़के की पीठ हाथ से सहलाते हुए अपनी बोली में कहा —"डर गया ।"

वर्मा ने फिर पूछा—"क्या ?"

वर्मा के हाथ में एक मोटा सा सिगार जल रहा था । लड़की ने उस ओर संकेत कर दूसरे हाथ की मुट्ठी अपने होंठों पर तम्बाकू पीने के ढंग से रख कर कहा —"बाबू चुरट दे ।"

विरक्ति की उस अवस्था में भी इसे न समझना वर्मा के लिए सम्भव न था परन्तु उस ने एक बार फिर आश्चर्य से पूछा—"क्या ?"

जवान लड़की ने अपने शरीर को जाड़े के सकोच में सिकोड़ कर तम्बाकू पीने का इशारा दोहराते हुए उसी सरलता से या उसी मधुर धृष्टता से उत्तर दिया—"बाबू बड़ा जाड़ा है, चुरुट दे।"

वर्मा ने हाथ का सिगार उस की ओर बढ़ा दिया। सिगार का कश खींच, खाँस कर कृतज्ञता भरी मुस्कराहट से सलाम कर वह युवती सिगार पीती और खाँसती सड़क के नीचे ढलवान पर बनी स्लेट से छायी झोपड़ियों की ओर चली गई।

दूसरे दिन पहले पहर की खिलखिलाती धूप सेंकने के लिये वर्मा फिर उसी पुल पर जा बैठा था। वही समय कोयले वालियों के आने का था। चार-पांच औरतों के बाद वह जवान लड़की कोयले के बोझ से हाँफती हुई आई। उसके चेहरे पर कोयले की काली गर्द की महीन तह छा रही थी। दोनों कनपटियों और नाक पर से पसीने की बूंदें बहने के कारण गोरे रंग की लकीरें सी पड़ गयी थीं। वह बोझ से हाँफती जा रही थी। केवल आँखों की मुस्कराहट से सलाम कर वह चली गई।

कुछ देर बाद हाथ का सिगार खतम कर वर्मा ऊपर अपने मकान के बरामदे में जा बैठा। उसने देखा उसके पीछे-पीछे उसका पहाड़ी नौकर नीचे बाजार से तरकारी लिए चला आ रहा है और उसके पीछे, पीठ पर कोयले की कण्डी लिए, हांफती हुई वही जवान लड़की।

कोयले वाली ने मुस्कराकर एक बार और सलाम किया और पिछवाड़े कोयला डाल कर फिर सामने आई। बायें हाथ से वह पीठ पर लटकती खाली कण्डी की रस्सी सम्भाले थी। मोटे कपड़े की उस की मैली चादर बेपरवाही से समेट कर सिर पर रखी हुई थी। बदन पर एक मोटा कुरता घुटनों तक, नीचे बिर्जिसनुमा पायजामा और गले में चवन्नियों और मूँगे के लाल दानों की माला, मालाओं के नीचे सीने का उभार मैले कपड़ों में से उठा आ रहा था।

वह जवान लड़की थी, युवती शब्द उसके लिए उपयुक्त नहीं था। क्या जंगल में फिरने वाली जवान हिरनी को भी युवती कहना चाहिए? अपने शरीर पर यौवन के चिन्हों के प्रति संकोच से वह परिचित न थी। उसकी पिण्डलियों की गोलाई उसके पायजामे से झलक रही थी। बाँयें पैर के अंगूठे

से दायें पैर की एड़ी को सहलाते हुए, दायें हाथ की हथेली पर आठ आने के पैसे दिखा उस ने कातर स्वर में कहा—"इतने भारी बोझ के आठ आने ? कुछ बखशीश मिलता तो………!"

जेब से एक रुपया निकाल कर वर्मा ने उसकी ओर फेंक दिया। लड़की का चेहरा दमक उठा। प्रसन्नता से चमकती हुई आँखों से विनीत सलाम कर वह चलने को हुई और फिर जरा घूमकर उसने मुस्कराते हुए हाथ की मुट्ठी तम्बाकू पीने के ढङ्ग से होठों पर रख कुछ संकोच से कहा—"बाबू, चुरुट।"

जगनू से एक सिगरेट मँगाकर वर्मा ने उसे दिला दिया। वर्मा कुर्सी पर उसी जगह बैठा रहा। वह सोच रहा था, कितनी सरल और निस्संकोच है।

उस जवान कोयले वाली की आँखें बड़ी-बड़ी थीं, दाँत अनार के दानों जैसे सफेद-मोतिया, ओंठ पतले-पतले और लाल। उस की सुघड़ नाक के नीचे मुलम्मे का एक छोटा सा बुलाक झूल रहा था। गर्दन उसकी लम्बी, उठी हुई। यह सब कुछ बहुत सुन्दर होने पर भी वर्मा का ध्यान उस ओर न था। सौन्दर्य को देखना उस ने छोड़ दिया था। वह उसेपर्याप्त देख चुका था। एक ही बात उस की आँखों के सामने बार-बार फिर जाती—वह थी, निष्कपट सरलता। संकोच से सिर झुका कर दुहरी हो जाने वाली, लज्जा से लाल कन्दील बन जाने वाली शीलवतियों को उसने खूब देख लिया था। उन की बात तक सोचना अब उसे गवारा न था लेकिन मनुष्य के दुख को तीव्रतर बनाने के लिए अदृष्ट का यही योग है कि जिसे विस्मृत कर मन से दूर कर देना चाहते हैं, वह उतना ही अधिक हमारे मन में प्रतिध्वनित होता है। वर्मा विरक्ति से रूपा की स्मृति को दुत्कार देना चाहता था परन्तु वह हठ कर नाना रूप में उसके सामने आ खड़ी होती।

रूपा के प्रति घृणा के इस घने धुन्द में जब वह अपने नेत्र मूँद लेना चाहता था, दूर से प्रकाश का अस्पष्ट-सा काँपता हुआ एक बिन्दु उसे दिखाई दिया। घृणा की यंत्रणा से त्राण पाने के लिये वर्मा प्रकाश के उस बिन्दु की ओर बढ़ा। आश्रय पाने के लिये उस ने हाथ फैला दिये। वह प्रकाश था—वही कोयले वाली, कोयले की धूल से मैली, पीठ पर कण्डी लटकाए, बायें पैर के अँगूठे से बायें पैर की एड़ी सहलाते हुए, दाँया हाथ

आगे बढ़ाए। उस की वह निष्कपट निस्संकोच सरलता ! उसे एक सिगरेट तक माँग लेने में संकोच न हुआ ! कैसे विनय से परन्तु निस्संकोच भाव से उस ने कहा--"बखशीश मिलती तो।"

वर्मा बरामदे में कुर्सी पर शिथिल बैठा रहा। सामने देखता वह सोचने लगा—बरफ़ की उन चोटियों और मनुष्य के कलुषित हाथों से अछूती प्रकृति की गोद में रहने वाले यह लोग कितने निश्छल और प्राकृतिक हैं। एक गम्भीर साँस ले उस ने सोचा - बनाव सिंगार की कृत्रिमता एक ओर हटाकर, यह कोयले वाली रूपा की अपेक्षा क्या कहीं अधिक सुन्दर नहीं ?... पर सौंदर्य है ही क्या ? मनुष्य क्या खिलौना है जो उसका दाम इस तरह आँका जाय ?

प्रतिहिंसा के आवेग में मनुष्य प्रायः ऐसी अड़चनें लाँघ जाता है जिन्हें समझदारी की अवस्था में फाँदना कठिन और अनुचित जान पड़ता है। दूसरे दिन दोपहर वर्मा के मन में फिर पुल पर जा बैठने की इच्छा हुई। भद्रता के विचार से संकोच को उसने अपनी निर्बलता और कपट समझा और उसे कुचल डालने के लिये वह पुल पर जा बैठा।

दो दिन वह बहुत देर तक पुल पर बैठा रहा परन्तु वह कोयले वाली दिखाई न दी। दिन भर में अनेक बार इस असफलता से उसे खिन्नता अनुभव हुई। तीसरे दिन भी बहुत देर बाद, अनेक कोयले वालियों के निकल जाने के बाद, वह कोयले वाली भारी बोझ के नीचे हाँफती हुई आई। परिश्रम और पसीने से क्लान्त, मुख पर हल्की मुस्कराहट से उस ने सलाम किया और आगे बढ़ गई। वर्मा ने सिर झुका कर सलाम लिया परन्तु कुछ कह न सका। उसकी आँखें लड़की के पीछे-पीछे जा रही थीं। सहसा घूम कर कोयले वाली ने पूछा--"बाबू, कोयला लेगा ?"

वर्मा ने हामी भर दी।

कोयले वाली को आसानी हो गई। बाजार में कोयला न बिकने पर वर्मा बाबू उस का कोयला खरीद ही लेते थे क्योंकि जाड़े की बरसात और बरफ से पहले कोयला इकट्ठा कर लेना जरूरी था। जाड़े भर भागसू में ही रहने का निश्चय वर्मा ने बाँध रखा था।

जाड़े की बरसात ! और भागसू की बरसात ! तीन दिन से पानी गिर

रहा था। अंगीठी में कोयले दहक रहे थे। सामने वर्मा शाल ओढ़े बैठा निष्क्रियता में तन्द्रा का आनन्द ले रहा था। शायद हवाई महल बना रहा था कि क्रियात्मक जीवन की पटरी पर से फिसल गई उस के जीवन की गाड़ी फिर से क्योंकर चालू हो सकती है परन्तु बीच-बीच में आ खड़ी होती थी, कोयले वाली और उसकी निस्संकोच सरलता।

उसी समय बरामदे में क़दमों की चाप सुनाई दी। वर्मा को उस से कुछ भी कौतूहल न हुआ। आने-जाने वाला उस के यहाँ कौन था?...... दूध वाला, डाकिया, या नौकर बाजार से लौटा होगा। पत्तों का छाता बरामदे में रखने की आहट भी न सुनाई दी। नौकर भीतर आया। उसके हाथ में कुछ सौदा था। उस ने कहा—"कोयले वाली कोयला लाई है!"

विस्मय से वर्मा ने पूछा—"इस बरसात में?"

उठकर वर्मा दरवाजे में आया। बरामदे में कोयले वाली भारी कण्डी के नीचे दबी खड़ी थी। उसके कोयलों पर पत्तों का एक छाता रखा था। कोयले छाते से बहुत कुछ ढक गए थे परन्तु हेमन्त की उस वर्षा से स्वयम् अपने शरीर को बचाने के लिए कोई उपाय न था। उसके कपड़ों से जल टपक रहा था और उसके दाँत बज रहे थे। व्याकुलता से हाथ का इशारा कर वर्मा ने कहा—"कोयला वहीं छोड़ दो और भीतर आग के सामने आ जाओ!"

दीवार के सहारे फर्श पर कण्डी को टिका कोयले वाली ने माथे पर लगी कण्डी की पट्टी को ढीला किया और कमान की तरह पीछे झुक, कण्डी की रस्सियों के बन्धन से छूट गई। भीगे कपड़ों के कारण जाड़े से ठिठुरती, सिमटती, जैसे बन्दर दो पैरों पर खड़ा हो असुविधा से चलता है, वैसे ही कोयले वाली आगे बढ़ी।

कुर्सी की पीठ पर से एक तौलिया उठा उस की ओर फेंक कर वर्मा ने हुकुम दिया, पानी पोंछ डालो। तौलिए की सफ़ेदी के कारण उसे सहमते देख वर्मा ने अपना हुक्म जोर से दोहराया—"जल्दी करो।"

कृतज्ञता से हँसकर कोयले वाली हाथ मुंह-पोंछने लगी। उत्साह में औचित्यानौचित्य भूल वर्मा ने कहा—"यह सब भीगा कपड़ा उतार डालो! यह शाल ओढ़ लो।"

कोयलेवाली चौंक पड़ी। हंस कर गर्दन हिलाते हुए उसने इनकार किया—"ना"

कुछ समझ कर वर्मा ने बात बदली—"अच्छा आग के सामने बैठ जाओ।"

आग के सामने वह फर्श पर उकड़ूं बैठ गई। ठिठुर कर ऐंठी हुई अपनी नीली ऊँगलियों को वह कोयलों पर रख देना चाहती थी। उसकी देह अब भी थर-थर काँप रही थी। चार-पाँच मिनिट में आँच की गरमी से उसके कपड़ों से भाफ के बादल उठने लगे।

वर्मा विचित्र विचारधारा में बह चला। यह कोयले वाली कोयले का भारी बोझ पीठ पर लादे, जाड़े के मेंह में जमी जा रही है और दूसरे मनुष्य इस के कोयलों के सुखद सेंक में बैठ तम्बाकू पी मजा कर रहे हैं। यह इतना कोयला बना कर भी जाड़े में उसे सेंक नहीं सकती। अपने पेट की आँच बुझाने के लिए इसे छम-छम बरसते पानी में पीठ पर कण्डी लिए बाजार में फिरना होगा और पौने-आधे दामों जो कुछ मिलेगा लेकर अपना कोयला छोड़ना पड़ेगा, नहीं तो जायगी कहाँ ? करेगी क्या ? क्या इसके पास कोयला रखने के गोदाम हैं ! इस के पास वर्षा, आँधी और धूप में उड़ चलने वाले मोटरों की शक्ल के मकान नहीं हैं। प्रपंच से रुपया कमाकर उस से और रुपया खींचने के दूसरे प्रपंच कर सकने वालों का हाथ इसकी पीठ पर नहीं है इसलिए यह पहाड़ों और शहरों में बंगले बना कर जेठ में पूस का और पूस में जेठ का मजा नहीं ले सकती। जरा सी सरदी से जुकाम और जरा सी गरमी से सिर दरद अनुभव कर सकने का अधिकार इसे कहाँ है ! इसे यह अवसर कहाँ है कि जरा-जरा सी बात पर लज्जा से लाल बन जाय !

वर्मा ने लड़की की ओर देखा। उस का काँपना रुक गया था। उस के कपड़ों से खूब भाफ उड़ रहा था। उस के चेहरे का नीलापन दूर हो कर आग की छाया से लाली आ गई थी। संतोष का एक सांस ले वर्मा ने एक सिगरेट कोयले वाली को दिया और दूसरा अपने होठों में दबा, दियासलाई जला उस की ओर बढ़ाई परन्तु इतनी देर में वह अपना सिगरेट सुलगाने के लिए कोयले पर झुक चुकी थी।

अपना सिगरेट सुलगा माँचिस को अंगीठी में फेंकते हुए वर्मा ने पूछा --"तुम्हारा नाम क्या है ?"

"पखनू"

"पखनू ! देखो, तुम मेंह में भीग कर कोयला बेचने मत जाना ! मेंह के रोज कोयले का दाम हम तुम को दे देगा ।" --वर्मा ने कहा । मुस्कराकर कृतज्ञता और अनुमति से पखनू ने सिर झुका दिया । कुछ देर और सोचकर लम्बा कश खींचते हुए वर्मा ने पूछा---"पखनू, इतने जाड़े में तुम यह भीगे हुए कपड़े कैसे पहने रहोगी ?"

"और तो हैं नहीं" --पखनू ने हंस कर उत्तर दिया ।

"तुम सब लोग जाड़े-पानी में ऐसे ही कोयला बेचता है ?"

हथेली पर गाल रख पखनू ने उत्तर दिया- "हाँ, मलकी नहीं बेचने जाती । अब वह चाय वाले बाबू के घर में रहती है और तो सब जाती हैं । कोई एक दिन न जाय पर यह तो रोज बरसेगा !"

वर्मा फिर कुछ देर सोचता रहा । फिर अपने पश्मीने का शाल उतार पखनू के कन्धे पर रख उसने कहा --"तुम इसका कपड़ा अपने लिये सियो । ओढ़ने को हम और देगा ।" पखनू कुछ क्षण उस शाल की ओर देखती रही । फिर एक पुलक से उसे ले लिया । उस के नेत्र चमक उठे ।

बारिश में बाहर जाना सम्भव नहीं था परन्तु वर्मा का मन चाह रहा था तेज चाल से दूर तक चलने को । सांझ तक वह एक उतावली में टहलता रहा । वह अपनी शक्ति से कुछ कर डालना चाहता था । एक विचार उसके मन में अनेक रूप में बार-बार उठ कर उसे बेचैन कर देता था । जैसे सिर में चोट खाये कुत्ते को मक्खियां चैन नहीं लेने देतीं, वह बार-बार मूंड़ झकोरता है, वही अवस्था इन विचारों और कल्पनाओं के कारण वर्मा की हो रही थी ।

अगले दिन भी बारिश नहीं थमी । व्याकुलता भरी दीर्घ प्रतीक्षा के बाद दोपहर का समय आया । वर्मा बरामदे में ही खड़ा था । पत्तों का छाता लगाये, मेंह की बूंदों में सिमटती-सिमटती पखनू आई और बैठी रही । इसी तरह वह आने-जाने लगी ।

महीना भर के करीब बीत गया। माघ के दिन थे। कभी धूप और कभी बादल। मौका होने से वर्मा दोपहर की सुखद गरमी में दूर तक टहल भी आता। वह रूपा को कभी भूल न पाया था पर अब वह उसकी याद से उदास नहीं होता। अब उस की याद आने पर वह बेपरवाही से नाक सिकोड़ कर कहता—पाखंडी, रुपये के गुलाम लालची।

पखनू कभी सुबह ही आ जाती, कभी दोपहर को और कभी सांझ को। पड़ोस के लोग वर्मा के कान बचाकर जो बात कहते, उसे भाँप कर भी वह बेपरवाह बन जाता। सम्मानित कहलाने वाले लोगों के तरीके और व्यवहार की उपेक्षा करने में उसे संतोष अनुभव होता था। वह घूमने जाता तो सुन्दर-सुन्दर जंगली फूल पखनू के लिए चुन लाता। पखनू भी उसकी नकल में आस पास के उजाड़ पड़े बंगलों के अहातों में खिले फूल नोच लाती।

वर्मा पखनू को 'पुखराज' कह कर पुकारने लगा।

×   ×   ×

सुबह से बरफ की हलकी-हलकी फुहार पड़ रही थी। खूब जाड़ा था रसोई घर में वर्मा का नौकर लगातार देगची में कड़छी चला रहा था। वर्मा आराम कुर्सी पर बैठा था और कुर्सी की बांह पर पुखराज। वह वर्मा के शाल का कुढ़ता-पायजामा पहने थी। एक महीन शाल बेपरवाही से उस के कंधों पर पड़ा था। प्रतिदिन साबुन के झाग से घुल-घुल कर उसके चेहरे से कोयले की धूल गायब हो चुकी थी और परिश्रम की कठोरता की जगह लावण्य की कोमलता आ गई थी। पुखराज की नजर अंगीठी की ओर थी। आँच की झलक से उसका चेहरा सिन्दूर की तरह हो रहा था। उसकी आंखों और होठों पर रहस्यमयी मुस्कराहट छा रही थी। अधीर और व्याकुल स्वर में वर्मा बार-बार पूछ रहा था—"कहो, कहती क्यों नहीं!"

वर्मा के बहुत आग्रह करने पर पुखराज ने धीमे स्वर में कहा—"तुम अपनी याद की कोई चीज दो!"

झुटपुटे बादलों में जैसे सहसा सूर्य की किरण फूट पड़े, वैसे ही वर्मा को सूझा, इस अबोध और गरीब के शरीर में भी हृदय है और उसमें भावुकता!

द्रवित हृदय से उसे अपनी बाँहों मे समेट, उस के होंठ चूमते हुए वर्मा बोला—"मेरी पुख, मैं तुझे अपनी तसवीर दूंगा ।"

अंगूठे मे उँगली का नाखून खोंटते हुये होंठ बिचकाकर पुखराज ने पूछा—"तसवीर से क्या होगा ?"

भावुकता की और भी ऊँची उड़ान की आशा में पुलकित हो, पुखराज की ठोढ़ी हाथ में ले वर्मा ने पूछा,—"तो फिर क्या लोगी ?"

आँखें ऊपर उठा पुखराज ने उत्तर दिया—"चाय वाले बाबू ने मल्की को सोने की जंजीर दी है । मैं भी सोने की कोई चीज लूंगी ?"

वर्मा की भावुकता का ज्वार सहसा उतर गया । कुछ सुस्त आवाज में उस ने पूछा—"सोने का क्या होगा ?"

लाड़ में मचल कर पुखराज ने उत्तर दिया—"बुढ़ापे में क्या खाऊँगी ?"

पुखराज की कमर में पड़ी वर्मा की बाँह ढीली पड़ गई । कुछ देर बाद वह दोनों हाथों में सिर थाम कर गहरे सोच में पड़ गया । फिर वह उठा और दूसरे कमरे में जा, ट्रंक खोल उस ने देखा एक सौ छियालीस रुपये उस में थे । सौ रुपया ला कर उस ने पखनू की झोली में डाल दिया । फिर दरवाजा खोल, बरफ की उड़ती फुहारों में पुखराज को बाहर निकाल, दरवाजा बन्द कर वह आँखें मूँद कुर्सी पर जा बैठा ।

बहुत समय तक उसी अवसन्न अवस्था में पड़े-पड़े कई दीर्घ:निश्वास लेने के बाद छत की ओर टकटकी लगाये क्रोध में उस ने कहा—"हाय सोना ! हाय रुपया !......यह मोटरवाली और कोयलेवाली सब एक हैं । इन का देवता पैसा है, प्रेम नहीं ।"

दूसरे दिन वह बहुत व्यस्त भाव से असबाब बाँध रहा था । तुरन्त अमृतसर पहुंच, अपने पिता के मशीनों की दलाली के कारोबार में सम्मिलित होने के लिये उस का मन छटपटा रहा था ।

छः

तूफ़ान का दैत्य

जिस सीमा से आगे मनुष्य की शक्ति और पहुंच नहीं जा पाती, वहीं से भगवान और देवताओं का राज्य आरम्भ हो जाता है। हिमालय पहाड़ की इतनी अधिक पूजा और मानता इसीलिए है कि वह मनुष्य के लिए सुगम नहीं। हिमालय देवताओं की बस्ती है। हिमालय के दुर्गम पथों और संकरे दर्रों के परे जो प्रदेश हैं वह भी स्वर्गीय हैं, देवताओं के योग्य हैं। वहीं की एक बात सुनिये:—

साँझ हो चुकी थी। घने बादलों के कारण ठीक जान नहीं पड़ता था कि सूर्य अस्त हो गया है या नहीं। लोग खेतों से लौट आये थे। सारों में (बैल बाँधने के छप्पर) चमरबैल (याक) सिर हिला-हिला, कर भूसी को रौंद-रौंद कर खा रहे थे। आने-जाने वाले मुसाफिर सराय में टिककर पत्थर के चूल्हों में आग जला चुके थे।

बेमौसिम की धीमी-धीमी झड़ी लग रही थी। घरों में लोग कम्बल के कपड़े पहने आग के चारों ओर बैठ, तम्बाकू की चिलम से दम खींच-खींच कर खाँस रहे थे। आग पर धरे, कालिख के अनेक परत चढ़े हुए 'समावार' (चाय, पकाने के बर्तन) अपना सुरीला राग गुन-गुना रहे थे। उन में कढ़ती हुई चाय की तीखी भाफ की फुफकार फैल कर, चारों-ओर बैठे क्लान्त शरीरों को सांत्वना दे रही थी।

स्लेट और तख्तों की नीची, ढलुआ छतों से निरन्तर पानी की बूंदें गिर-गिर कर सूनी, तंग हाथ-हाथ भर चौड़ी गलियों में बहती हुई वर्षा के जल

की क्षीण धारायें, घरों के दरवाजों के आगे लगे कूड़ा-करकट और मल के ढेरों को क्षीण कर रही थीं।

"झामामूची" में पूरा सन्नाटा था। छतों पर वर्षा की बूंदों के गिरने के अतिरिक्त और कोई शब्द सुनाई न देता था। मकानों में चिमनियां न होने के कारण छतों के किनारों से धुआँ फूट-फूट कर गांव पर धुएं का एक घना आवरण छा गया था। इस से गांव की निस्तब्धता और भी गम्भीर हो गई थी। पहाड़ की ढलवानों में खड़े, अपनी बांहें फैलाये, गांव को वर्षा से बचाने का यत्न करने वाले वृक्ष भी सुप्त थे।

केवल एक शब्द सुनाई दे रहा था। तथागत बुद्ध के गांव के किनारे बने, काई की पर्तों से ढक कर हरे हो गये मन्दिर से पुजारी का डमरू, गम्भीर मन्द स्वर में, पद्मासन बांधे बुद्ध की मूर्ति के सम्मुख "ॐ मणि पदमने हूं" की गुंजार कर रहा था।

ठण्डी और तेज हवा का एक झोंका आया। उस ने आँधी का रूप ले लिया। वह अंधड़ बन गया और फिर तूफान! आकाश से बरफ के पत्थर पड़ने लगे। हवा की तेजी से वे आड़े तीरों की तरह चोट कर रहे थे। मानों कुरूक्षेत्र के मैदान से कौरवों की और पाण्डवों अट्ठारह और ग्यारह अक्षौहिणी सेनायें झामामूची गांव पर बाण-वृष्टि कर रही हों। ओलों की कड़ा-कड़ मार से झामामूची मुखरित हो उठा।

फसल मे दाना पड़ चुका था। भेड़ें ब्या चुकी थीं।....फसल का क्या होगा?....नई ब्याई भेड़ों और उन के मेमनों का क्या होगा?

गांव में हाहाकार मच गया। हू, हू, करती तेज हवा छतों में घुसने लगी। बच्चे रोने लगे। कुत्ते भोंकने लगे। माताओं ने बच्चों को कम्बलों में लपेट दिया। वे बाहर निकल छत को हवा में उड़ जाने से बचाने के लिए ऊपर पत्थर रख देना चाहती थीं परन्तु बच्चे रो-रो कर उन से लिपट गये थे। गांव भर में कोहराम मच गया —"हाय, तूफान का दैत्य!"

हाहाकार करते हुए लोग गलियों में निकल पड़े। "पुंगपू! पुंगपू!!" चिल्लाते हुए वे लोग तथागत के मन्दिर की ओर दौड़े। सब लोगों ने चिल्ला-चिल्ला कर मन्दिर को पुजारी के दैत्य का सामना करने के लिए पुकारा।

× × ×

मन्दिर के पुजारियों का काम तूफान तथा दूसरे भयानक दैत्यों से गांव की रक्षा करना ही है। यही उन की सार्थकता है। घन्टों तूफान के देव से लड़ कर यह लोग गांव की रक्षा करते हैं।

तीन बरस पहिले, जब पूस में बरफ की आँधी आई थी, पुंगपू रात भर तलवार और बर्छी ले कर तूफान से लड़ता रहा परन्तु पार न पा सका। आखिर जब बर्छी-से पैने बरफ के फलों से उस का चेहरा लहू-लुहान हो गया, उस के कम्बल के कपड़े पसीने से सराबोर हो टपकने लगे, वह बेहोश हो गिर पड़ा तब भी दैत्य का बल कम न हुआ। उस रोज मनुष्य की शक्ति तूफान के दैत्य को हरा न सकी।

पुंगपू हार मान कर टीले से नीचे उतर आया। सब फसल छाई में मिल गई। सैकड़ों भेड़ें और बीसों चमर गाय मर गईं। हफ्तों कोई मन्दिर में नहीं गया। किसी ने पुजारी को सीधा नहीं दिया। गांव क्रोध और वितृष्णा भरी तिर्छी दृष्टि से देख कर मुह फेर लेते।

जब पुजारी तूफान के दैत्य से लड़ कर गांव की रक्षा नहीं कर सकता तो उसे खिला-खिला कर मोटा करने से लाभ ? महीनों में गांव वालों का क्रोध उतरा।

आज फिर पुंगपू की परीक्षा का दिन था। उस का शरीर भय से कांप रहा था। एक हाथ में लम्बी तलवार और दूसरे में बरछा ले कर तूफान से लड़ने के लिए वह टीले पर चढ़ने लगा। वह जानता था, दूसरी बार दैत्य से हार कर लौटने का अर्थ होगा—देवता पुंगपू से रुष्ट है, इस कारण गांव पर देवता का श्राप पड़ रहा है। यह उस के लिये मौत के मुंह में जाना था।

बीभत्स स्वर में तुमुल 'हुल-हुल' ध्वनि कर बरछा घुमाते हुये वह चोटी की ओर दौड़ पड़ा। भामामूची के लोग भय से कांपते हुए अपने घरों को लौट पुंगपू और तूफानी दैत्य के युद्ध के परिणाम की प्रतीक्षा करने लगे।

तूफान की भयंकर हू, हू, के बीच कभी-कभी हवा में उड़ती हुई पुंगपू की क्षीण ललकार भी सुनाई पड़ जाती थी। वह ललकार-ललकार कर तूफान पर बर्छे और तलवार का प्रहार कर रहा था।

कुछ देर बाद पत्थर गिरने का शब्द सहसा थम गया। केवल हवा का

और बाकी रह गया। कुछ देर में वह भी खत्म हो गई। दरवाजों और छतों की फाँकों से चाँद की उजली किरणें भीतर आने लगीं। तूफ़ान से रक्षा पा सब लोग मकानों से बाहर निकल आये।

चारों ओर धुनी हुई रूई-सी निर्मल, उजली बरफ़ के सिवाय और कुछ दिखाई न देता था। उजली चाँदनी में आँखें चौंधिया रही थीं। रहे-सहे बादल आकाश में उड़े चले जा रहे थे। वे भी निर्मल उजली रूई के ढेर से जान पड़ते थे।

ग्रामवासी मन्दिर के आँगन में एकत्र होने लगे। लोगों ने देखा पुंगपू तलवार कन्धे पर रखे और बर्छे की लकड़ी को पत्थरों पर टेकता हुआ टीले पर से उतर कर आ रहा है। उसके चौड़े चेहरे, माथे और चपटी नाक पर पसीने की लकीरें चाँदनी में चमक रही थीं। उस की छोटी-छोटी आँखों में विजय और आत्म-विश्वास चमक रहा था। आंगन में एकत्र समुदाय ने कमर तक शरीर को झुका उस का अभिवादन किया और अपनी भेंट उस के सामने रख दी। ग्रामवासी प्रसन्न थे:—

"कितनी जल्दी पुंगपू ने तूफ़ान के दैत्य के दाँत खट्टे कर दिये? पुंगपू निश्चय ही भगवान का प्रतिनिधि है। वह हमारे गाँव की रक्षा करता है। दैत्य ने हानि बहुत पहुँचाई। पुंगपू ने हमारी रक्षा कर ली वरना दैत्य हम सब का नाश कर देता।"

पुंगपू बर्छी उठाकर बोला—"आज तूफ़ान के दैत्य को परास्त कर मैंने कह दिया है कि उसकी पूजा का भाग, लाल जुआर का आटा, चमर गाय का मक्खन, भेड़ का माँस और नमक उसे हर अमावस और पूनों को भेंट कर दिया जायगा। अब उसे इस गाँव में आने की जरूरत नहीं।"

गाँव वालों ने श्रद्धा से सिर झुकाकर नियम से भेंट पहुँचाने की प्रतिज्ञा की।

× × ×

"तुम्हें क्या पुंगपू की दैवी शक्ति में सन्देह है? न हुए तुम झामामूची गांव में!"

सात

कुत्ते की पूंछ

श्रीमती जी कई दिन से कह रही थीं—"उलटी बयार" फ़िल्म का बहुत चर्चा है, देख लेते तो अच्छा था।

देख आने में एतराज न था परन्तु सिनेमा शुरू होने के समय अर्थात् साढ़े छ: बजे तक तो दफ़्तर के काम से ही छुट्टी नहीं मिल पाती। दूसरे शो में जाने का मतलब है—बहुत देर में सोना, कम सोना और अगले दिन काम ठीक से न कर सकना लेकिन जब 'उल्टी बयार' को सातवां हफ़्ता लग गया तो यह मान लेना पड़ा कि फ़िल्म अवश्य ही देखने लायक होगी।

रात साढ़े बारह बजे सिनेमा हाल से निकलने पर टाँगे का दर कुछ बढ़ जाता है। आने-दो आने में कुछ बन-बिगड़ नहीं जाता लेकिन टाँगेवाले के सामने अपनी बात रखने के लिए कहा—"नहीं, पैदल ही चलेंगे। चाँदनी रात है। ग़नीमत से चार कदम चलने का मौक़ा मिला है।"

उजली चाँदनी में सूनी सड़क पर सामने चलती जाती अपनी बौनी परछाईं पर क़दम रखते हुए चले जा रहे थे। जिक्र था, फ़िल्म में कहाँ तक स्वाभाविकता है और कितनी कला है? कला के विषय में स्त्रियों से भी बात की जा सकती है, खासकर जब परिचय नया हो! परन्तु स्वयम् अपनी स्त्री से, जिसे आदमी रग-रोयें से पहचानता हो, बहस या विचार विनिमय का क्या मूल्य?

श्रीमती को शिकायत है, दुनिया भर के सैकड़ों लोगों से बहस करके भी

मैं उन से कभी बहस नहीं करता। मैं उन्हें किसी योग्य नहीं समझता। इस अभियोग का बहुत माकूल जवाब मैंने सोच डाला: --

"जिस आदमी से विचारों की पूर्ण एकता हो, उससे बहस कैसी ?"

इस उत्तर से श्रीमती को बहुत दिन तक संतोष रहा कि चतुर समझे जाने वाले पति के समान विचार के कारण वे भी चतुर हैं। परन्तु दूसरों पर बहस की संगीन चला सकने के लिये पति नाम के रेत के बोरे पर कुछ अभ्यास करना भी तो जरूरी होता है इसीलिये एक दिन खीझ कर बोलीं --"बहस न सही, आदमी बात तो करता है। हम से कभी कोई बात भी नहीं करता।"

सो पति होने का टैक्स चुकाने के लिये, अपनी स्त्री के साथ कला का जिक्र कर चाँदनी रात का खून हो रहा था। मैं कह रहा था और वे हूं-हूं कर-कर हामी भर रही थीं। अचानक वे पुकार उठीं --"यह देखा !"

स्त्री के सामने कला की बात करने की अपनी समझदारी पर दांत पीस कर रह गया। सोचा वह बात हुई--'राजा कहानी कहे, रानी जूं टटोले।' देखा: --

हलवाई की दुकान थी। सौदा उठ चुका था। बिजली का एक बल्ब अभी जल रहा था। लाला दुकान के तख्त पर चिलम उलट कर दीवार से लगे औंघा रहे थे। नीचे सड़क पर कढ़ाई ईंट के सहारे टिका कर रक्खी गई थी। उसे माँजने के प्रयत्न में एक छोटी उम्र का लड़का उसी में सो गया था। कालिख से भरा जूना उस के हाथ में थमा था और उस की बाँह फैली हुई थी। दूसरा हाथ कड़े को थामे था। कढ़ाई को घिसते-घिसते लड़का औंघा गया और फैली हुई बांह पर सिर रख सो गया।

एक कुत्ता कढ़ाई के किनारे बच रही मलाई को चाट रहा था। मैं देख कर परिस्थिति समझने का यत्न कर रहा था कि श्रीमती जी ने पिघले हुए स्वर में क्रोध का पुट दे कर कहा --"देखते हो जुल्म ! ''' क्या तो बच्चे की उम्र है और रात के एक बजे तक यह कढ़ाई, जिसे वह हिला नहीं सकता; उस से मंजाई जा रही है।"

मेरी बांह में डाले हुए हाथ पर बोझ दे वे कढ़ाई पर झुक गईं और लड़के की बांह को हिला उसे पुचकार कर उठाने लगीं।

लड़का नींद से चौंक कर झपाटे से कढ़ाई में जूते के राड़ लगाने लगा परन्तु श्रीमती जी के पुचकारने से उस ने नींद भरी आँख उठा कर उन की ओर देखा।

मेरी इस बात को अपने समझने योग्य भाषा में प्रकट करने के लिये वे बोलीं—"हाय, कैसे पत्थर दिल होते हैं जो इस उम्र के बच्चों को इस तरह बेच डालते हैं। और इस राक्षस को देखो, बच्चे को मेहनत पर लगा खुद सो रहा है।" फिर बच्चे को पुचकार कर साथ चलने के लिए पुकारने लगीं।

इस गुल-गपाड़े से लाला की आँख खुल गई। नींद से भरी लाल आँखों को झपकाते हुए लाला देखने लगे पर इस से पहले कि वे कुछ समझें या बोल पायें, श्रीमती जी लड़के का हाथ थाम ले चलीं। फिल्म और कला की चर्चा श्रीमती जी की करुणा और क्रोध के प्रवाह में डूब गई।

कानूनी पेशा होने के कारण कानून की जद का ख्याल आया। समझाया—"कम उम्र बच्चे को उसके माँ-बाप की अनुमति के बिना इस प्रकार खींच ले जाने से पुलिस के झंझट में पड़ना होगा।"

राजा और समाज के कानून से जबरदस्त कानून है स्त्रियों का। पति को बिना किसी हीलो-हुज्जत के स्त्री के सब हुक्म मानने ही पड़ते हैं। श्रीमती जी ने अपना कानून अड़ाकर कहा—"इसके मां-बाप आकर ले जायेंगे। हम कोई लड़के को भगाये थोड़े ही लिए जा रहे हैं। लड़के पर इस तरह जुल्म करने का किसी को क्या हक है? यह भी कोई कानून है?"

लाला आंख झपकाते रहे और हम उस लड़के को लिए चले आये। लाला बोले क्यों नहीं? कह नहीं सकता। शायद कोई बड़ा सरकारी अफसर समझ कर चुप रह गये हों।

लड़के से पूछने पर मालूम हुआ कि दरअसल उसके मां-बाप थे नहीं। मर गए थे। कोई उस का दूर का रिश्तेदार उसे लाला के यहाँ छोड़ गया था।

दूसरे रोज लाला बँगले के अहाते में हाजिर हुए और बोले कि यों तो आप माई-बाप हैं लेकिन यह मेम साहब की ज्यादती है। लड़के के बाप की तरफ़ लाला के साठ रुपये आते थे वह मर गया। लाला उल्टे और अपनी गाँठ से लड़के को खिला-पहना कर पाल-पोस रहे थे। लड़के की उमर ही क्या है कि कुछ काम करेगा? ऐसे ही दुकान पर चीज धर-उठा देता था

सो मेम साहब उसे भी उठा लाई । लाला बेचारे पर जुल्म ही जुल्म है । उन्हें उन के साठ रुपये दिला दिये जायँ, सूद वे छोड़ देने को तैयार हैं । या फिर लड़का ही उन के पास रहे ।

बरामदे के फ़र्श पर जूते की ऊँची एड़ी पटक, भौं चढ़ा कर श्रीमती जी ने कहा—"आल राइट ।" इसके बाद शायद वे कहना चाहती थीं साठ रुपये ले जाओ !

परिस्थिति नाजुक देख बीच में बोलना पड़ा—"लाला, जो हुआ, अब चले जाओ वर्ना-लड़का भगाने और 'क्रुएल्टी टू चिल्डरन' (बच्चों के प्रति निर्दयता) के जुर्म में गिरफ्तार हो जाओगे ।" अहाते के बाहिर जाते हुए लाला की पीठ से नजर उठाकर श्रीमती ने विजय गर्व से मेरी ओर देखा । उनका अभिप्राय था—देखो तुम खामुखाह डर रहे थे । हम ने कैसे सब मामला ठीक कर लिया । तुम कुछ भी समझ नहीं सकते !

× × ×

लड़के का नाम था हरुआ । श्रीमती ने कहा—यह नाम ठीक नहीं । नाम होना चाहिए, हरीश । लड़के की कमर पर केवल एक अंगोछा-मात्र था, शेष शरीर ढका हुआ था मैल के आवरण से । सिर के बाल गर्दन और कानों पर लटक रहे थे ।

लाइफ ब्वाय साबुन की झाग में घुल-घुल कर वह मैल बह गया और हरीश साँवला-सलोना बालक निकल आया । दरबान के साथ सैलून में भेज कर उस के बाल भी छंटवा दिये गए । बिशू के लिए नई कंघी मंगाकर पुरानी हरीश के बालों में लगा दी गई । बिशू के कपड़े भी हरीश के काम आ सकते थे परन्तु लड़कों में चार बरस का अन्तर काफी रहता है । खैर, जो भी हो हफ्ते भर में हरीश के लिए भी नेवीकट कालर के तीन कमीज और नेकर सिल गए । उस के असुविधा अनुभव करने पर भी उसे जुराब और जूता पहनना पड़ा । श्रीमती जी ने गम्भीरता से कहा—"उसके शरीर में भी वैसा ही रक्त-मांस है जैसा कि किसी और के शरीर में !"—उनका अभिप्राय था, अपने पेट के लड़के बिशू से परन्तु इस का कारण था कि बिशू आखिर उन का बेटा भी है ।

उन्होंने कहा—"उस के भी दिमाग है। वह भी मनुष्य प्राणी है और उसे मनुष्य बनाना भी हमारा कर्त्तव्य है। हरीश के कोई काम स्वयम् कर देने पर प्रसन्नता के समय वे मेरा ध्यान आकर्षित कर कहती - "लड़के में स्वाभाविक प्रतिभा है। यदि उसे अवसर मिले तो वह क्या नहीं कर सकेगा। हां, उस मजदूर का क्या नाम था जो अमेरिका का प्रेजीडेण्ट बन गया था ? मौका मिले तो आदमी उन्नति कर क्यों नहीं सकता ?"

चार वर्ष की आयु ऐसी नहीं जिस में अधिकार का गर्व न हो सके या श्रेणी विशिष्टता का भाव न हो। अपनी जगह पर अपने से नीची स्थिति के बालक को अधिकार जमाते देख, अपनी माँ को दूसरे के सिर पर हाथ फेरते देख और हरीश को अपनी सम्पत्ति का प्रयोग करते देख, बिशू को ईर्षा होने लगती। रोनी सूरत बना कर वह होंठ लटका लेता या हाथ में थमी किसी चीज से हरीश को मारने का यत्न करने लगता। श्रीमती जी को सब बातों में गरीबी और मनुष्यता का अपमान दिखाई देता। गंभीरता से वे बिशू को ऐसा अन्याय करने से रोकतीं और हरीश का साहस बढ़ा कर उसे अपने आप को किसी से कम न समझने का उपदेश देतीं।

हरीश बात-बात में सहमता, सकपकाता। पास बैठने के बजाय दूर चला जाता और बिशू के खिलौनों के लोभ की झलक दिखाई देती रहती। श्रीमती जी उसे सन्तुष्ट कर, उस का भय मिटा कर उसे बिशू के साथ समानता के दर्जे पर लाने का प्रयत्न करतीं। कई दफे उन्होंने शिकायत की कि मेरे स्वर में हरीश के लिए वह अपनापन क्यों नहीं आ पाता जो आना चाहिए, जैसा बिशू के लिए है ? इस मामले में कानून का हवाला या वकालत की जिरह मेरी मदद नहीं कर सकती थी इसलिए चुप रहने के सिवा चारा न था।

हरीश के प्रति सहानुभूति, उसे मनुष्य बनाने की इच्छा रखते हुए भी मैं श्रीमती जी को इस बात का विश्वास न दिला सका। हरीश के प्रति उन की वत्सलता और प्रेम मेरी पहुंच से एक बालिस्त ऊंचा ही रहता।

श्रीमती जी को शिकायत थी कि हरीश आकर, अधिकार से उनके पास क्यों नहीं जरूरत की चीज़ के लिए जिद्द करता ? उन्हें ख्याल था कि इन सब का कारण मेरा भय ही था।

एक दिन बुद्धिमानी और गहरी सूझ की बात करने के लिए उन्होंने

सुना कर कहा—"पुरुष सिद्धान्त और तर्क की लम्बी-लम्बी बातें कर सकते हैं परन्तु हृदय को खोल कर फैला देना उन के लिए कठिन है।" सोचा—श्रीमती जी को समानता की भावना के लिए उत्साहित कर उन्हें अपना बड़प्पन अनुभव कराने के लिए मैं अवसर पेश नहीं कर पाता हूं, यही मेरा क़ुसूर है।

× × ×

एक रियासत के मुकदमे में सोहराबजी का जूनियर बन कर केदारपुर जाना पड़ा। उम्र बढ़ जाने पर प्रणय का अंकुश तो उतना तीव्र नहीं रहता पर घर की याद जवानी से भी अधिक सताती है। कारण है, शरीर का अभ्यास। समय और स्थान पर आवश्यकता की वस्तु का सहज मिल जाना विदेश में नहीं हो सकता और न शैथिल्य का संतोष ही मिल सकता है।

केदारपुर में लग गये चार मास। औसत आमदनी से अढ़ाई गुना आमदनी के लोभ ने सब असुविधाओं को परास्त कर दिया। घर से सम्बन्ध था केवल श्रीमती जी के पत्र द्वारा। कभी सप्ताह में एक पत्र और कभी सप्ताह में तीन आते। बिरू को जुकाम हो जाने पर एक सप्ताह में चार पत्र भी आये। आरम्भ के पत्रों में हरीश के जिक्र का एक पैराग्राफ रहता था और दूसरे पैराग्राफ में उसके सम्बन्ध में थोड़ी-बहुत चर्चा। सोचा—मेरी गैर-हाजिरी में मेरी असुदारता से मुक्ति पा कर लड़का तीव्र गति से मनुष्य बन जायगा।

कुछ पत्रों के बाद हरीश की खबरों की सरगर्मी कम हो गई। फिर शिकायत हुई कि वह पढ़ने-लिखने की ओर मन न लगा कर गली में मैले-कुचैले लड़कों के साथ खेलता रहता है। बाद में खबर आई कि वह कहना नहीं मानता, स्वभाव का बहुत जिद्दी है। बहुत डल (सुस्त दिमाग) है। हर समय कुछ खाता रहना चाहता है। इसी से उस का हाजमा ठीक नहीं रहता।

लौट कर आने पर बैठा ही था कि श्रीमती जी ने शिकायत की—"सच-मुच तुम बड़े अजीब आदमी हो! हम यहाँ फिक्र में मरते रहे और तुम से खत तक नहीं लिखा जा सकता था! ऐसी भी क्या बेपरवाही! यहाँ यह मुसीबत कि लड़के को खाँसी हो गई। तीन-तीन दफे डाक्टर को बुलवाना

था। घर में सिर्फ दो तो नौकर हैं। वे घर का काम करें या डाक्टर को बुलाने जायं ! इस लड़के को देखो" हरीश की ओर संकेत करके, "जरा डाक्टर बुलाने भेजा तो सुबह से दुपहर तक गलियों में खेलता फिरा और डाक्टर का घर इसे नहीं मिला। डाक्टर जमील को शहर में कौन नहीं जानता ?"

हरीश बिशू को गोद में लिए श्रीमती जी की ओर सहमता हुआ मेरे समीप आना चाहता था। इस उम्र में भी आदमी इतना चालाक हो सकता है ? हरीश को बिशू से इतना अधिक स्नेह हो गया था या वह उसे इसलिए उठाये था कि उसे सम्भाले रहने पर उसे खाली खेलते रहने के कारण डाँट न पड़ेगी।

उस की ओर देख श्रीमती जी ने कहा—"अरे उसे खेलने क्यों नहीं देता ? तुझे कई दफे तो कहा, गुसलखाने में गीले कपड़े पड़े हैं उन्हें ऊपर सूखने डाल आ !"

हरीश महफिल से यों निकाले जाने के कारण अपनी कातर आँखों से पीछे की ओर देखता चला गया। कुछ ही देर में वह फिर आ हाजिर हुआ। उस की ओर देख श्रीमती जी ने कहा—"हरीश जाओ देखो, पानी लेकर खस की टट्टियों को भिगो दो ! सुनो, यों ही पानी मत फेंक देना। स्टूल पर खड़े हो कर अच्छी तरह भिगो देना।"

मेरी ओर देखकर वे बोलीं जिस काम के लिए कहूं—"कतरा जाता है।"

"इसे पढ़ाने के लिए जो स्कूल के एक लड़के को चार रुपये देने के लिए तय किया था, वह क्या नहीं आता ?"—मैंने पूछा।

बिशू के गले का बटन लगाते हुए श्रीमती जी बोलीं—"खामुख़ाह पढ़े भी कोई, यह पढ़ता ही नहीं; पढ़ चुका यह ! बस खाने की हाय-हाय लगी रहती है। कोई चीज संभालकर रखना मुश्किल हो गया है।"

हरीश कमरे में तो दाखिल न हुआ लेकिन दरवाजे से झांक कर चक्कर जरूर काट गया। वह सन्देह भरी नजरों से कुछ ढूंढ़ रहा था। फल की टोकरी से कुछ लीचियां निकालकर श्रीमती जी ने बिशू के हाथ में दीं। उसी समय हरीश की ललचाई हुई आंखें बिशू के हाथों की ओर ताकती हुई दिखाई दीं !

श्रीमती जी खीझ गई—"हरदम बच्चे के खाने की ओर आँखें उठाये रहता है। जाने कैसा भुक्कड़ है! इन लोगों को कितना ही खिलाओ, समझाओ, इनकी भूख बढ़ती ही जाती है...............ले इधर आ!" दो लीचियाँ उसके हाथ में देकर बोलीं, "जा बाहर खेल, क्या मुसीबत है।"

उसी शाम को एक और मुसीबत आ गई। जो कपड़े हरीश ने सुबह सूखने डाले थे, वे हवा में उड़ गये। श्रीमतीजी ने भन्ना कर कहा—"तुम्हीं बताओ, मैं इसका क्या करूँ? वही बात हुई न कि 'कुत्ते का गूं न लीपने का न थापने का।' अच्छी बला गले पड़ गई। समझाने से समझता भी तो नहीं।.......इसकी सोहबत में बिशू ही क्या सीखेगा? कोई भला आदमी आये, सिर पर आकर सवार होता है। स्कूल भिजवाया तो वहां पढ़ता नहीं। लड़कों से लड़ता है। अपने आगे किसी को कुछ समझता थोड़े ही है। तुमने उसे लाट साहब बना दिया है, कम-जात कहीं अपनी आदत से थोड़े ही जाता है?"

क्या उत्तर देता? बात टाल गया। फिर दूसरे समय श्रीमती जी ने बिशू को उठाकर गोद में दे दिया। वे देखना चाहती थीं कि बिशू मेरी गोद में बैठने से कैसा जान पड़ता है? उस समय हरीश भी दौड़कर आया और बिलकुल सटकर खड़ा हो गया। पोज का यों बिगड़ जाना, श्रीमती जी को न भाया। सुनाकर बोलीं—"बन्दर को मुंह लगाने से वह नोचेगा ही तो! इन लोगों के साथ जितनी भलाई करो, उतना ही सिर पर आते हैं। यह कोई आदमी थोड़े ही है।"

कह नहीं सकता हरीश कितना समझा और कितना नहीं पर इतना वह जरूर समझा कि बात उसी के बारे में थी और उसके प्रति आदर की नहीं थी। इतना तो पालतू कुत्ता भी समझ जाता है। गले का स्वर ही यह प्रकट कर देता है। हरीश कतराकर चला गया और मुंडेर पर ठोढ़ी रख गली में झाँकने लगा।

कोई ऐसा ढंग सोचने लगा कि अपनी बात भी कह सकूं और श्रीमती को भी विरोध न जान पड़े। कहा—"जानवर को आदमी बनाना बहुत कठिन है। उसे पुचकार कर पास बुलाने में बुरा नहीं मालूम होता क्यों कि उस में दया करने का सन्तोष होता है परन्तु जब जानवर स्वयम् ही पंजे

गोद में रख मुंह चाटने का यत्न करने लगता है, तो अपना अपमान जान पड़ने लगता है।"

आवाज गरम कर श्रीमती जी बोलीं—"तो मैं कब कहती हूँ........"

उन्हें बात पूरी न करने देता तो जाने कितना लम्बा बयान और जिरह सुननी पड़ती, इसलिए झट से बात काटकर बोला—"ओहो, तुम्हारी बात नहीं, मैं बात कर रहा हूं यह सरकार और मजदूरों के झगड़े की"' !"

मन में भर गये क्रोध को एक लम्बी फुफकार में छोड़ उन्होंने जानना चाहा, मैं बहाना तो नहीं कर गया। इसलिये पूछा—"सो कैसे ?"

उत्तर दिया—"यही सरकार मजदूरों की भलाई के लिये कानून पास करती है और जब मजदूरों का हौंसला बढ़ जाता है, वे खुद ही अधिकार मांगने लगते हैं, तब सरकार को उनका आन्दोलन दबाने की जरूरत महसूस होने लगती है।"

श्रीमती जी को विश्वास हो गया कि किसी प्रकार का विरोध मैं उनके व्यवहार के प्रति नहीं कर रहा। बोलीं—"तभी तो कहते हैं, 'कुत्ते की पूंछ बारह बरस नली में रक्खी, पर सीधी नहीं हुई।' हाँ, उस रोज वो लाला साठ रुपये की धमकी दे रहा था। बनिया ही ठहरा! कहीं सूद भी गिनने लगे तो जाने रक़म कहाँ तक पहुँचे ? इस झगड़े में पड़ने से लाभ ?"

श्रीमती जी का मतलब तो समझ गया परन्तु समझ कर आगे उत्तर देना ही कठिन था इसलिये उन की तरफ विस्मय से देख कर पूछा "क्या मतलब तुम्हारा ?"

"कुछ नहीं"—श्रीमती जी झुंझला उठीं। उन्हें झल्लाहट थी मेरी कम समझी पर और कुछ झेंप थी जानवर को मनुष्य बना देने के असफल अभिमान पर।

मैं जानता हूं—बात दब गई, टली नहीं। कल फिर यह प्रश्न उठेगा परन्तु किया क्या जाय ? कुत्ते की पूंछ एक दफे काट देने पर उसे फिर से उस की जगह लगा देना कैसे सम्भव हो सकता है ? और मनुष्यता का चसका एक दफे लग जाने पर किसी को जानवर बनाये रखना भी तो सम्भव नहीं।

आठ

शिकायत

बैरिस्टर साहब मन और शरीर की उस अवस्था में पहुंच चुके थे जब मनुष्य संघर्ष और भोगों से थक कर आत्म-चिन्तन में ही शान्तिलाभ करता है। धन-उपार्जन के लिये बैरिस्टर साहब ने कठोर परिश्रम किया था; परन्तु धन को वे धन की आराधना के लिए नहीं कमाते थे। कमाते थे, उस का उपभोग करने के लिये। इसलिए जब धन आ गया तो वे हविस छोड़ शान्ति की खोज करने लगे। वे उस वैराग्य का सुख-लाभ करने लगे जो पूर्णता और तृप्ति से होता है।

बहुत बरस हुए 'हरमल' में किसी अंगरेज ने चाय का एक छोटा-सा बाग लगाया था। उस बाग से कुछ मुनाफा न हुआ और जब कांगड़ा से कुल्लू जाने वाली मोटर की नई सड़क बन गई तो वह बाग सड़क से पांच मील परे पड़ कर बिल्कुल ही उजड़ गया। साहब के लम्बे-चौड़े आलीशान बंगले के बरामदों के एकान्त आश्रय में गीदड़ों और लोमड़ियों के मूक-प्रेम का आदान-प्रदान होने लगा। मनुष्यों की ही तरह मकानों के भी अच्छे-बुरे दिन आते हैं। बैरिस्टर साहब की नजर जब इस बंगले पर पड़ी, इस के दिन फर गये।

बंगला आधुनिक सभ्यता की आवश्यकताओं के अनुरूप बनाया गया था; परन्तु सभ्यता की भौगोलिक परिधि से परे पड़ जाने से सिसक रहा था। भारी-भारी देवदार वृक्षों की छाया में अपने नेत्र, नाक, कान मूंदे, काई की कई-कई परतों से लदी खपरैल की ढलवां छत ओढ़े वह बंगला बैरिस्टर

साहब को किसी आत्म-लीन, शान्त, तटस्थ, पलितकेश, वयोवृद्ध की तरह जान पड़ा। बंगला उन्होंने खरीद लिया और प्रति वर्ष तीन-चार मास वहाँ बिताने लगे।

बंगले के चारों ओर पहाड़ी के ढालू पार्श्वों पर चाय का बाग लगाया गया था। वह बाग अब चाय का जंगल बन गया था। चाय की झाड़ियाँ, चाय तोड़ने वाले कुलियों की अंगुली से त्राण पा और पृथ्वी से यथेष्ट रस प्राप्त कर, विशाल और हरी-भरी हो उठी थीं। चाय के उस बाग में न तो कुलियों के जमादार की गाली मिली कर्कश ललकार ही सुनाई पड़ती थी और न चाय तोड़ने वाली पहाड़िनों के यौवन का उद्गार छलक पड़ने से सम्मिलित राग की लहरी ही सुनाई देती थी। शायद उन बीते दिनों की सूक्ष्म-स्मृति-मात्र ही देवदार के घने पेड़ों की छाया में चाय के चिकने पत्तों पर सो रही थी। अब उन झाड़ियों में बुलबुलों का एक उपनिवेश बस गया था और उन्हीं के तराने उस सुनसान में गंजते थे।

बैरिस्टर साहब का एक ही लड़का था, भुवन। तेईस वर्ष की अवस्था में एम० एस सी० पास कर वह कालेज में पढ़ाने लगा। स्वयं पिता की अंगुली पकड़ कर चलने के झंझट से बचने के लिए उस ने एक पुत्री पैदा कर दी। इस के अतिरिक्त भुवन की सुसराल से बहन के पास आ कर रहने वाले उस के साले-सालियों पर भी बैरिस्टर साहब के वात्सल्य की बूंदें झरती ही रहती थीं।

पहाड़ के मौसिम में बैरिस्टर साहब के साथ हरमल में निरन्तर यदि कोई रहता था तो नौकर-चाकर और उन की पोती 'बुलबुल' अपनी आया को साथ ले कर। उस वर्ष जब अप्रैल के मध्य से बैरिस्टर साहब के पहाड़ जाने की तैयारी होने लगी, तब भुवन की छोटी साली निर्मल लाहौर में बहन के यहां ही थी। निर्मल ने उसी वर्ष 'वूमेन्स कालेज' से बी० ए० की परीक्षा दी थी। निर्मल के परीक्षा-क्लान्त मुख की ओर स्नेह से देख बैरिस्टर साहब ने अपने हरमल के बंगले की एकान्त, शान्त शोभा का वर्णन कर कहा—"चलो बेटी चलो, तुम भी गर्मी में वहीं आराम करना। कभी-कभी बुलबुल को पढ़ाने में तुम्हारा दिल भी बहल जायगा।"

निर्मल मसूरी और काश्मीर की सैर कर चुकी थी। पहाड़ जाने के

जिक्र से उस की स्मृति-गुदगुदा उठी । सामने लटकती अपनी विपुल वेणी को दोनों हाथों से थाम, बहन की ओर देख उस ने पूछा --"चली जाऊं ?" —अनुमति मिल गई ।

× × ×

झगड़े, झन्झट, कर्त्तव्य, शिकायत और शहरों की गर्मी से भरे संसार को पीछे छोड़ निर्मल ताऊजी और बुलबुल के साथ हरमल के बंगले में जा पहुंची । उस शान्त, एकान्त और ठण्डी वायु की सिहरन को प्रचुर मात्रा में अनुभव करने के लिए वह दीर्घ निश्वास ले अपनी लम्बी पलकों को खोलने और मूंदने लगी ।

दो नौकरों ने दो दिन पहले हरमल पहुंच कर कमरों की सफाई और झड़ाई कर दी थी परन्तु फिर भी तीन-चार दिन तक निर्मल को साड़ी का आंचल कमर पर कस प्रबन्ध करना ही पड़ा । बैरिस्टर साहब अखबार गोद में रख, उत्तर-पूर्व की ओर कोहरे से ढकी नीली पर्वत-राशि पर छाई धूप में रंग बदलती बरफ की ओर देख-देख और स्वामी विवेकानन्द के राजयोग को पढ़-पढ़ कर समय बिता देते थे । बुलबुल के लिए हरिया ने बड़े-बड़े बालों वाला एक मोटा-सा पिल्ला ला दिया था । उसे उस की चिन्ता से फुर्सत न मिलती थी । निर्मल बड़े हाल में पुस्तक ले कर बैठती तो अकेली, दोपहर में लेटने जाती तो अकेली और देवदारों की छाया में चाय की ऊंची-ऊंची झाड़ियों में टहलती तो अकेली ।

सप्ताह होते-होते निर्मल की परीक्षा से हुई थकान दूर हो गई और जीवन की क्रियात्मक-स्फूर्ति से कुछ करने की इच्छा अनुभव होने लगी । निर्मल की गति और प्रवृत्ति बहिर्मुखी थी । पढ़ने की अपेक्षा उसे हाथ से कुछ करने में ही अधिक सन्तोष अनुभव होता था । स्वास्थ्य, चुस्ती और सुघड़ता के लिए उस की प्रशंसा थी । भावपूर्ण कविता की अपेक्षा बोलना उसे अधिक पसन्द था । समय की कमी को उसने कभी अनुभव नहीं किया । कभी निढाल और अस्त-व्यस्त उसे किसी ने नहीं देखा ।

बैरिस्टर साहब सुबह-शाम घूम कर व्यायाम करते थे । या तो वे अकेले पुरानी सड़क पर डेढ़ मील जा कर लौट आते या घड़ी में समय देख चाय की

वीथियों में घूम लेते। हृदय वात्सल्य से छलकता रहने पर भी उन के सुबह-शाम के भ्रमण में किसी के सहयोग के लिए अवसर न था। अलबत्ता भ्रमण के लिए वे बुलबुल और निर्मल दोनों को ही नसीहत करने से न चूकते।

बैरिस्टर साहब को सैर के लिये जूते पहनते देख निर्मल भी सैर के लिए तैयार होने लगी। अभ्यासवश घर से निकलने के पहले उस ने मुंह-हाथ धोया और शृंगार की आलमारी के सामने गई। अपनी विशेष पसंद की नीली साड़ी पहन वह घूमने चली।

वह सैर के लिए गई परन्तु पैर उठते न थे। उन्हें घसीटना पड़ रहा था। एक अनुत्साह-सा उसे निढाल किये दे रहा था। ठीक उसी तरह जैसे मोटर के पहियों से हवा निकल जाने पर होता है। चारों ओर फैली हुई चाय की झाड़ियों, ऊंचे देवदारों और पहाड़ के ढलवानों पर दूर-दूर तक छाये हुए फूलों की उपेक्षा-भरी उदासीनता एक अदृश्य दलदल की तरह उस की गति रोक रही थी। मानों, वायु की लहरों पर चलने वाला शब्द शून्य में पहुंच कर, आगे चलने में असमर्थ हो रहा था। इसके मुकाबले में 'अनारकली' बाजार की वह भीड़, जहाँ सन्ध्या समय राह चलतों के वस्त्र का स्पर्श हुए बिना एक कदम चलना भी सम्भव नहीं, लाहौर की दूसरी सड़कों का अनुभव जहाँ कदम-कदम पर उत्सुक और कौतूहलपूर्ण तीव्र दृष्टि वस्त्रों को भेद कर शरीर की त्वचा को रोमांचित करती जाती है ; वहाँ कदमों में कितनी स्फूर्ति अनुभव होती है ! मानो पैरों में स्प्रिंग लगे हों ! एक विद्युत से व्याप्त वातावरण जो सभी ओर से आकर्षित कर शरीर को गतिमान कर देता है।

सन्ध्या के मन्द समीर में ऊंचे देवदार और बांझ के वृक्षों से एक अस्पष्ट मर-मर ध्वनि निकल रही थी। दिनचर्या से लौटे हुए 'बुलबुल-समाज' का व्यग्रतापूर्ण कलरव चाय की घनी झाड़ियों पर छा रहा था। चट्टानों के आस-पास 'लैन्टिना' के लाल, गुलाबी और पीले फूल सूर्य की अन्तिम किरणों में अपने तीखे निश्वास छोड़ कर अलसा रहे थे। चौपतिये गुलाब मोती की गुलाबी आब की पुट मिले मस्ती में निश्चल थे। सब ओर आत्म-सन्तोष, शांति और उपेक्षा भरे इस समारोह में अपना पूर्ण यौवन और परिष्कार लिए निर्मल, निर्जन सड़क पर वर्षा में भीगते हुए उस मुसाफिर की तरह थी

जिसके लिए छत का आश्रय कहीं नहीं, जो आकाश से झड़ते मोतियों के सौंदर्य को अनुभव नहीं करता।"

निर्मल आधी ही राह लौट पड़ी। जाते समय की अपेक्षा लौटते समय उसकी गति कहीं तेज थी। वह शरण पाने के लिए भागी जा रही थी। चाय की वीथियों में बुलबुलों का कलरव इस समय पहले की अपेक्षा भी अधिक था। निर्मल के कानों में वह प्रेम-स्वागत नहीं, प्रत्युत दुत्कार जान पड़ रहा था। लौट कर वह बरामदे में पड़ी आराम कुर्सी पर गिर-सी पड़ी, जैसे मार खाकर आई हो!

बैरिस्टर साहब लौटकर सन्तोष से बोले—"आज तो सैर करने गई थी निर्मल?...अरे, सैर से लौटने के बाद बिना गरम कपड़ों के यहाँ इस ठंड में इस तरह पड़ी हो? न-न बेटा, भीतर जाओ या गरम कपड़ा लो!" और वे भीतर चले गए।

बंगले में बिजली न होने के कारण बड़े कमरे में पैट्रोमैक्स (गैस) जल रहा था। गैस के तीव्र प्रकाश में आदमकद आईने के सामने पहुंच निर्मल ने गोरे शरीर पर नीली साड़ी पहने, घुंघराले बालों से भरे सिर वाली निर्मल को पहचान लिया। यही निर्मल जो मेल-मिलाप के अवसरों पर या बाजार में तृषित और मुग्ध आँखों पर कदम रखती हुई गर्व से लौटती थी ठीक उसी तरह जिस तरह संतुष्ट पशु कोमल घास को पैरों से रौंद कर चलता है।

आईने के सामने पहुंचकर अभ्यस्त विजय की एक मुस्कराहट निर्मल के ओठों पर फैल गई। उस ने पहचाना, वह तो वही विजयी निर्मल है परन्तु यहाँ वह किस पर विजय प्राप्त करे? वह आग की लपट-सी सुन्दर निर्मल यहाँ किसे जलाये? और जब जलाने को कुछ नहीं है, तो क्या बुझ जाय? गहरी ग्लानि के रूप में हृदय से एक निश्वास ने उठकर कहा—"कहाँ आ मरी तू?"

फोड़े को दबा कर मवाद निकाल देने से एक उत्कट पीड़ा के बाद शांति मिला मीठा-सा दरद शेष रह जाता है। उसी प्रकार की एक वेदना लिए निर्मल आईने के सामने से हट गई। गैस का दप-दप करता प्रकाश और मनुष्य की आँखों से शून्य बड़ा कमरा असह्य हो रहा था। उसके होंठ काँप उठे मानो आँखों से अभी जल बह जायगा। वह बरामदे के बाहर अन्धकार में,

चली गई। तारों से छिटके आकाश के नीचे अन्धकार में, देवदारों की घटाटोप छाया में पहुंच कर उसे मालूम हुआ कि वह जिन्दा ही कब्र में पहुंच गई है। दूर-दूर संसार से दूर, जीवन से दूर, पृथ्वी के अन्धकारमय गर्भ की यह शाँति है। जीवन-रहित, निश्क्रिय, निश्चेष्ट शान्ति उस का दम घोट रही थी और जीवन और यौवन का श्वास अपने वेग से उसके फेफड़ों को फाड़े डाल रहा था।

अचानक उसे कई आवाजें सुनाई दीं: आया और नौकर-चाकर चिल्लाकर पुकार रहे थे—"बीबी जी, बीबी जी!" बुलबुल परेशानी में चिल्ला रही थी—"मौसी जी! ओ मौसी!!" और बैरिस्टर साहब पुकार रहे थे—"निर्मल! बेटा निर्मल!!"

हाय! यह उसे क्या हो गया? झपट कर वह गुसलखाने में गई और तौलिए से हाथ-मुंह पोंछती हुई बाहर निकल आई। बैरिस्टर साहब ने हंस कर पूछा—"गुसलखाने में क्या नींद आ गई थी?" बुलबुल ने उसके घुटनों से लिपटकर कहा, "खाना खाने भी चलो मौसी जी!"

पहाड़ की सैर की उमंग में निर्मल तीन सूटकेसों में काफी साड़ियाँ लाई थी। दूसरे दिन विशेष परिश्रम से उसने उन सभी साड़ियों को अदल-बदल कर देखा उन में सब से सादी और बेरौनक साड़ी कौन है? अपने ऊपर क्रोध कर वह अपने आपको मिट्टी में मिला देना चाहती थी।

× × ×

हरिया प्रति दूसरे दिन ग्यारह बजे पालमपुर डाक लेने-देने और बाजार से सामान लाने जाता था इसलिए निर्मल बरामदे में बैठी प्रातःकाल की धूप में, सामने लटके केशों की धूप-छाया में अपनी सहेली हेमा को पत्र लिख रही थी:—

"......पहाड़ों के इस भयंकर निर्जन में मन पर कैसा एक बोझ-सा अनुभव होता है? जान पड़ता है, सजीव ही कब्र में दबा दिया गया है, जहाँ से अपनी आवाज भी संसार के कानों तक नहीं पहुंच सकती।...जीवन की व्यर्थता साकार सामने खड़ी होकर पूछती है—तुम जिन्दा क्यों हो?..........और

जिन्दा हो, इसका प्रमाण क्या है ? ऊँचे-ऊँचे पहाड़ हैं, बड़े-बड़े पेड़ हैं, फूल भी बहुत हैं, पक्षी भी चहचहाते हैं; परन्तु मनुष्य के सुख-दुख की उन्हें कुछ परवाह नहीं ; मानो, मनुष्य धूल में रेंगनेवाला एक कीड़ा-मात्र है ।

"मेरा विचार था--पहाड़ की जलवायु से स्वास्थ्य को लाभ पहुंचेगा परन्तु यहाँ अनुभव होता है एक निठालपन । मन पर एक दबाव । सुबह-शाम दिसम्बर का-सा जाड़ा लगता है और वायु मानो हमें घृणा से सूखे पत्तों की तरह उठाकर नीचे फेंक देना चाहती है और धमकाती है--तुम यहाँ आई क्यों ? चाहती हूँ वायु के किसी झोंके से उड़कर लाहौर पहुंच जाती । मुझे गरमी मन्जूर है ; परन्तु इस डरावनी निर्जन शांति से भय लगता है ।

बुलबुल एक पिल्ले से खेलती रहती है या दूसरे-दूसरे पहाड़ी बच्चों के साथ खेला करती है । उसे देख सोचती हूं, क्या अनुभव न करना सुख है ? तो शायद मृत्यु सब से बड़ा सुख हो ! ताऊजी चुपचाप पहाड़ों और पेड़ों को देखा करते हैं । मानों, चिर-शान्ति और चिर-एकान्त के लिए मन को अभ्यास करा रहे हैं । सोचती हूं, यहां से भाग निकलूं परन्तु ताऊजी से क्या कहूँगी ? अभी तो बारहवाँ ही दिन है और मैं यहाँ आई हूँ; चार मास के लिये ! कमल बहन जी को भी चिट्ठी लिखनी है । आज पहले तुम्हीं को लिख रही हूं । वे मिलें तो कह देना बुलबुल मजे में है और ताऊजी भी ।"

सोग की-सी अवस्था में लम्बे-लम्बे परन्तु दबे हुए साँस खींच कर निर्मल ने दिन बिता दिया । सन्ध्या हरिया पालमपुर से डाक और सौदा लेकर लौटा । निर्मल वानप्रस्थी मनोवृत्ति में बरामदे में टहल रही थी । हरिया ने डाक उस के सामने छोटी मेज पर रख दी और सौदे का सामान दिखाकर चला गया ।

डाक में कुछ अखबार, तीन-चार पत्र बैरिस्टर साहब के नाम और दो स्वयं उस के नाम थे । इन में से एक के लिफ़ाफ़े पर बहन कमल के हाथ के अक्षर थे और दूसरे पर हेमा के ।

हेमा निर्मल की अन्तरंग सखी थी । इस उदासी में उस का पत्र पा हृदय में एक गुदगुदी-सी अनुभव होने लगी । शेष डाक को छोड़, उसी पत्र को ले वह तुरन्त के जले पैट्रोमैक्स के प्रकाश में पढ़ने के लिए भीतर चली गई । दो दफे पूरा पत्र पढ़ चुकने के बाद भी वह फिर तीसरी दफे पत्र पढ़ने लगी:

"……नगरों का जीवन कितना घृणित है ? पुरुषों का व्यवहार कितना

बाजार में सड़क पर जहां देखो वे अपनी भूखी दृष्टि की घृणापूर्ण ... कर स्त्रियों के शरीर से माँस नोच लेना चाहते हैं। स्त्रियों चोंचें मार- में आखिर उन्हें क्या मिलता है ? स्त्री बेचारी करे क्या ? जरा को दु... हर निकलते ही शव पर मंडराते हुए चील-कौवों की तरह बेहया घर ... घेर लेती है। कदम उठाना दूभर हो जाता है। इस शरीर का क्या नअ. जाय ? क्या जमीन में गाड़ दें, तभी शान्ति मिलेगी ? मैं सोचती हूं, किया कहीं कोई एकान्त स्थान पृथ्वी के किसी कोने में मिल जाता तो स्वतन्त्रता से सांस ले सकती।

"''''मकान से निकलते ही दो-एक पीछे लग जायंगे और शिकारी कुत्तों की तरह पीछा किया करेंगे। सोचती हूं, इस से इन्हें क्या लाभ ? और मारा ही इस में क्या नुक्सान ? फिर भी मालूम होता है कि नजरों के धक्के बावला-सा कर देते हैं। धक्कों में पैर जमीन से उठ कर सिर चकराने सा लगता है। चाहती हूं, इस शहर को छोड़ कर कहीं एकान्त में चली जाऊं, जहाँ यह पुरुष न हों''''''" जब तक निर्मल पत्र को पढ़ती रही, जीवन की ऊष्णता उसे घेरे रही। पत्र समाप्त कर एक ओर रखते ही मानो एकान्त निर्जनता की कब्र का बोझ हृदय पर आ पड़ा। वह घबराकर फिर पत्र पढ़ने लगी।

पत्र समाप्त होते ही उसे बुलबुल की पुकार सुनाई पड़ी—"मौसी जी, ओ मौसी जी, आओ न''''''!"—मानों बुलबुल बहुत दफे पुकार कर खीझ उठी है।

भोजन के बाद फिर वही पत्र। निर्मल पत्र छोड़ना ही न चाहती थी। मानो, पत्र में भरी 'शिकायत' ही जीवन का आधार है वह शिकायत समाप्त होते ही संसार समाप्त हो जायगा।

"गुडबाई दर्दे-दिल !"

मसूरी की एक खूब ढलुआ सड़क पर रिक्शायें आ-जा रही थीं। कुछ लोग पैदल चल रहे थे। नीचे की तरफ जाने वाले लोग तेजी से जा रहे थे और ऊपर की ओर जाने वाले हाँफते हुए। रिक्शाओं की घन्टियों की आवाजें, पहियों की घरघराहट और रिक्शा कुलियों के हांफने की आवाजें आ रही थीं। कुलियों के शरीर से पसीना बह रहा था। कुली बार-बार चिल्लाते थे —"बचो बाबू साहब ! बचो हुजूर ! रोक के !"......जोर लगाओ ! दायें-जोर !............बायें खींचो !"

एक रिक्शा, जिस में दो युवक सवार थे बहुत धीमे चल रही थी। रिक्शा का एक सवार क्रोध में कुलियों से बार-बार जल्दी चलने के लिए कह रहा था। कुली और जोर से हांफते थे और आपस में एक दूसरे के जोर न लगाने की शिकायत करते थे।

दोनों सवारों में से एक ने कहा—"रणजीत, यार उतर जाओ। इस से तो कहीं जल्दी पैदल पहुंच जाते। यह लोग नहीं खींच सकेंगे। चढ़ाई ज्यादा है।"

रणजीत ने उत्तर दिया—"नहीं तुम बैठो। ऐ कुली, चलता क्यों नहीं ? ......तमाशा करता है ?"

कुली—"हुजूर बौत सखत ऊंचा है। हुजूर चढ़ाई में ऐसा ई जाता।"

"उतरो यार रणजीत ! हटाओ इस झगड़े को ! बहुत बुरा मालूम होता है।"

रणजीत—"नहीं केशी, जूते और पैण्ट धूल से खराब हो जायेंगे। अभी पहुँचे जाते हैं यार"—रणजीत ने कुलियों को सम्बोधन कर डांटा, "नहीं चलेगा तो हम अभी उतर जायगा—क्यों तुम कमजोर आदमी लाता है? देखो, कितनी रिक्शा आगे चला गया?"

केशी—"अरे जोर क्यों नहीं लगाता तुम लोग?"

कुली और जोर से हांफने लगे। रिक्शा दाईं ओर घूमकर खट से पहाड़ की चट्टान से टकरा गयी।

"हैं, कुली गिर गया गया?........अरे देखो-देखो क्या हो गया इसे!"

एक कुली—"मर गया........बेहोश हो गया!"

दूसरा कुली—"साँस चलता है....ओ रमियाँ तू जा जल्दी पानी ला।"

रणजीत ने खिन्न स्वर में केशव से पूछा—"अब क्या होगा! यहाँ रिक्शा कैसे मिलेगी?....पहुँचेंगे कैसे? यह लोग बड़े बदमाश हैं। केशव अब क्या करेंगे? इन बरसाती-कोटों और टैनिस के रैक्टों को कौन उठायेगा?"

"यार रणजीत, अब पैदल ही चले चलो!"

"नहीं-नहीं,....ए कुली किधर जाता है वो?"

कुली—"हुजूर, कुली गिर पड़ा, उसके लिये पानी लेने जाता।"

रणजीत—"उसे बोलो एक रिक्शा लेकर आये!"

केशी—"क्या करते हो रणजीत! जब तक रिक्शा आयेगी, हम कोठी पर पहुंच जायेंगे।"

जाती हुई एक खाली रिक्शा की ओर संकेत कर रणजीत बोला—"यह लो! आ गई रिक्शा।....वेल, रिक्शा घुमाओ! पीछे को लौटो!" उस ने नई रिक्शा को पुकारा।

दोनों व्यक्ति रिक्शा में बैठ कर चल दिये।

पहली रिक्शा के एक कुली ने पुकारा—"हुजूर हमारा पैसा?"

रणजीत—"तुम्हारा पैसा कैसा? तुम ने हम को रास्ता में छोड़ा....हमारा वक्त खराब किया........कोई पैसा नहीं।"

रिक्शा के चले जाने के बाद चुटिया कर गिरे कुली के चारों ओर आदमी

इकट्ठे हो गये। एक पैदल जाने वाले सज्जन ने उस ओर देख कर पूछा—"इस कुली को क्या हुआ!"

कुली—"हुजूर गिर गया दम फूल के गिर गया।"

झुक कर वह सज्जन बोले—"इस का साँस तो चलता है, मुह में पानी डालो। इस के मुह से खून कैसा गिर रहा है!"

कुली—"सड़क का पत्थर लग गया हुजूर!"

दूसरा सज्जन—"क्यों, तुम लोग यह जानवर का काम क्यों करता है? तुम जानवर है जो गाड़ी खींचता है?"

"हुजूर पेट का वास्ते·········।"

दूसरा सज्जन—"अरे भाई इन का कसूर क्या? कसूर है उन लोगों का जो इन की गरीबी का फायदा उठा कर इन्हें इन्सान से हैवान बना देते हैं?"

भीड़ में से एक सज्जन ने द्रवित स्वर में सुझाया—"अरे इसे हस्पताल क्यों नहीं पहुंचाते? शायद बच ही जाय। मिस्टर सिनहा, तुम चले जाओ इन कुलियों के साथ। इसे हस्पताल पहुचवा दो!"

सिनहा—"हस्पताल ले जाऊं?·······कौन से हस्पताल? इन्सानों के या हैवानों के?·······अगर दोनों ही हस्पतालों ने इसे लेने से इन्कार कर दिया······?

दर्द भरे स्वर में गाते हुए वे चले गये:—

"दर्दे दिल के वास्ते पैदा किया इन्सान को,
वर्ना तायत के लिए कम न थे कार्रोबियाँ!"

× × ×

बंगले के सामने लान में टेनिस का खेल खत्म होने के बाद लोग चाय पी रहे थे।

एक युवती ने पुकारा—"लिली, तुम्हारी इन्तजार में तो चाय ठण्डी हो गई।"

लिलि—"दीदी आई, एक मिनट··············!"

समीप ही ग्रामोफोन पर रिकार्ड बज रहा था:--

"उमरिया बीत गई सारी, न आया मन का मीत।
धोखा खाने वाले नयना, हर दम धोखा खाते हैं।"

हँसकर लिली ने कहा--"नहिं दीदी, धोखा नहीं,...देखो सचमुच!...वो आते हैं।"

कुत्ते के भोंकने और रिक्शा की घन्टी की आवाज सुन लिली ने पीछे घूम-कर आती हुई रिक्शा की ओर देखा, रणजीत और केशव रिक्शा में से उतर कर आ रहे थे।

रणजीत ने रिक्शा में दो रुपये फेंक दिए।

कुली--"हुजूर कुछ बकशीश मिलता!"

केशव--"अरे! आठ आना तुम को बकशीश दिया और क्या लेगा? जाओ, तुम्हारे लालच का ठिकाना नहीं।"

पहली रिक्शा का एक कुली साथ-साथ दौड़ता आया था। वह पुकार उठा--"हुजूर, हमारा रिक्शा का पैसा। हमारा रिक्शा तो हुजूर ने पहले लिया था!"

रणजीत--"लिया था तो तुम ने हमको पहुँचाया नहीं! हम पैसा उस को देगा जो हम को पहुँचायेगा।"

केशव ने विरक्ति से कहा--"क्या जानवर है, मरते आदमी का फिक्र नहीं!........पैसे के लिए दौड़ा आया है।"

कुली--हुजूर हमारा आदमी मर जायगा, पैसा भी नहीं मिलेगा तो हम क्या करेगा?"

एक ओर बैठे लिली के पिता ने सहमकर ठीक से सुनने के लिए कान पर हाथ रख कर पूछा--"क्या आदमी मर गया?............आदमी कैसे मर गया?"

उपेक्षा से रणजीत ने उत्तर दिया--"ओ, नथिंग लाइक दैट। रिक्शा वाला था, ऐसे ही दम फूल कर गिर पड़ा।"

"रिक्शा वाला था"--समझने के लिये वृद्ध ने दोहराया और कुली की ओर देखकर पूछा, "क्या तुम्हारी रिक्शा का कुली था?"

कुली की ओर संकेत कर रणजीत ने उत्तर दिया—"जी हाँ, देखिये तो इन लोगों का लालच ! जिस्म में ताकत नहीं है तो तुम रिक्शा खींचने क्यों आते हो ? अपने पैसों के लिये दूसरे आदमी का वक्त खराब करेंगे···बेशरम कहीं के !"

कुली को धमकाने के लिए केशव बोला—"क्यों ऐसा कमजोर आदमी लाया ! तुम ने हमारा पैंतालिस मिनिट खराब कर दिया।"

लिली—"पैंतालीस मिनिट ?···डैडी, हम तो लायब्रेरी से यहाँ सैंतीस मिनिट में पहुंच जाते हैं और रणजीत भाई रिक्शा पर पैंतालीस मिनिट में !"

उस की अनसुनी कर केशव बोला—"हम पहुंचे तो टैनिस ही खतम हो गया। कई दिन से कुछ कसरत नहीं हो पाती। बैठे-बैठे बदन मिट्टी हो रहा है ?"

लिली के समीप पहले से बैठा युवक बोला—"लायब्रेरी बाजार से यहाँ तक पैदल आने में तो पूरी कसरत हो जाती है।"

रणजीत ने इस सुझाव का उत्तर दिया—"पैदल चलना एक बात है। कसरत दूसरी बात ! सड़क पर पैदल आवारागर्दी करना क्या अच्छा लगता है ? दैट डजंट लुक डीसेंट !"

किसी को भी न सुना कर वृद्ध ने नेत्र मूंद प्रार्थना की—"भगवान ! इस से पहले कि मुझे लोगों के कन्धों पर चढ़ कर चलना पड़े, मुझे इस दुनिया से उठा लेना !"

शशि अब तक चुपचाप सुन रही थी। सीने पर हाथ रख कर घबराहट से उस ने कहा—"मैं जरा जाऊंगी !"

रणजीत—"क्या बहुत थक गई टेनिस में ?"

लिली ने धीमे से बताया—"नहीं, दीदी का दिल बहुत कमजोर है, उस दिन बिल्ली ने कबूतर को पकड़ लिया था तो दीदी रो पड़ी थीं। भूल गये क्या ?"

परिस्थिति संभालने के लिये रणजीत ने कुली को सम्बोधन किया—"हूं ?···ऐ कुली, यह लो पांच रुपया ! जाओ, सिर न खाओ ! गेटआउट !"

× × ×

सांझ की चाय के बाद दूसरे लोग चले गये तो शशि और रणजीत लान में देवदारों की टहनियों में से छन कर आती हुई चांदनी में बेंच पर जा बैठे। निस्तब्धता भंग करते हुए रणजीत बोला "शशि,"........शशि !"... ...."क्यों, चुप क्यों हो ?"

शशि—"हाँ, कहिए ! क्य कहते हैं ?........"

गहरी साँस ले रणजीत ने कहा—"मैं क्या कहूँ....आज तुम ही कहो.... मैं तो कई दफे कह चुका ?"

उस की ओर न देख सिर झुका शशि ने पूछा—"आज क्या थक गये ?"

रण०—"कैसी बातें कर रही हो शशि ?....तुम से कहने में थक जाऊँगा मैं ?....यही तो जिन्दगी की एक आरजू है ? इसी की तो इन्तजार है !

बंगले से गाने की आवाज आ रही थी—

'उम्रे दराज मांग कर लाया था चार दिन
दो आरजू में कट गए दो इन्तजार में।'

रणजीत मुस्कराकर बोला—"देखो शशि, ग्रामोफोन भी मेरी वकालत कर रहा है।.........क्या सचमुच मेरी जिन्दगी आरजू और इन्तजार में ही कट जायगी ?"

दूर क्षितिज की ओर आँख उठा शशि ने गहरी साँस ली—"आरजू और इन्तजार।....मैं सोचती हूँ, एक बहुत बड़ी आरजू दिल में पैदा करूँ और फिर एक मुद्दत तक इन्तजार करती रहूं। छोटी-छोटी आरजुएं किस काम की ? आये दिन थोथी हो जाती हैं और फिर जिन्दगी ऐसे भटकने लगती है जैसे इसका कुतुबनुमा खो गया हो।"

लम्बी सांस ले रणजीत ने उत्तर दिया—"लेकिन मेरी जिन्दगी की आरजू इतनी बड़ी है कि शायद उसे दिल में लेकर ही एक दिन मैं आँखें बन्द कर लूंगा....और शशि, उस के लिए कुछ गम भी नहीं....अगर एक आरजू में जिन्दगी खत्म हो जाय तो क्या बुरा है.......मुझे इसी में सन्तोष है। दर्दे दिल की दौलत जिन्दगी में मैंने पाई है, उसी को लेकर जिन्दगी काट रहा हूं।"

शशि—"दर्द ! दर्दे दिल !! कितने प्यारे शब्द हैं रणजीत ! जिन के

मजे में तमाम जिन्दगी गुजार दी जा सकती है। सच कहती हूं रणजीत, जब तुम विलायत में थे, तुम्हारी चिट्ठी के लिए मैं बरामदे में बैठी पोस्टमैन का इन्तजार किया करती थी। खाना खाने के लिए लोग बुलाते तो मालूम होता फिजूल तंग कर रहे हैं। इन्तजार में कभी घड़ी की तरफ देखती —कभी पेड़ों की छाया की तरफ...... ....''

''और जब पोस्टमैन आता सिर्फ दूसरी चिट्ठियाँ लिए, तब मैं बिस्तर पर औंधे मुंह लेट जाती। अब याद आता है तो सोचती हूं कितने मीठे और अच्छे दिन थे वे ......!''

उत्साह से रणजीत ने पूछा—''और फिर ......?''

शशि—''और फिर मैं सुबह चाय पीने न जाती। खानसामा चाय की ट्रे मेरे कमरे में रख जाता। मैं खाने का सामान उठाकर खिड़की से बाग में फेंक देती......!''

एक लम्बी सांस लेकर रणजीत ने कहा—''फिर...........?''

शशि—''फिर माली और साइस के बच्चे उन टुकड़ों के लिए झगड़ते और उनकी मातायें इस वजह से आपस में झगड़तीं।''

रस भंग से विक्षिप्त हो रणजीत बोला—''ऊंह, जानवर कहीं के ......फिर ?''

शशि—''फिर मैं सोचती; काश यह लोग दर्दे-दिल का मजा जानते तो इन टुकड़ों पर जान क्यों देते ?''

रणजीत—''खूब ! शशि तुम बड़ी मसखरी हो.......फिर ?''

शशि—''भैया क्लब से आधी रात गये गुनगुनाते हुए आते.......लख्ते जिगर खाने को है, खूने जिगर पीने को। यह गिजा मिलती है लैली तेरे दीवाने को !'' एक और बहुत धीमी सी आवाज आती, ''हुजूर, आ गए ?

इस आवाज को मैं पहचानती थी।''

कौतूहल से रणजीत ने पूछा—''नाइस; किस की आवाज थी वह शशि ?''

शशि—''हमारे कश्मीरी बावर्ची की बड़ी लड़की की।''

आश्चर्य और कौतूहल की पुलक से रणजीत ने पूछा—''सचमुच !

शशि—"फिर भैया कोमल स्वर में उत्तर देते, नसीरन, अभी तक जाग रही हो ?··· उदास क्यों हो नसीरन ? ······ अच्छा मुस्कराओ एक बार ?"

उत्साह से रणजीत बोला—"यह बात, सचमुच, बड़े दिल फेंक हैं ! खूब, अच्छा फिर ?"

शशि—"फिर दो-चार रुपयों के खनकने की आवाज आती और एक वैसी आवाज आती जैसे नन्हें से बच्चे को प्यार करते समय आती है, समझे ?"

रोमांच और पुलक से जाँघ पर हाथ मार कर रणजीत ने कहा—"ओ माई गुडनेस ! दैटिजरियली वेरी रोमाण्टिक······ हाँ आगे········?"

शशि—"मैं सोचती, यही दर्दे-दिल की दवा है····यह इन्सान के दिल और जिस्म का मोल है !····सब कुछ खरीदा जा सकता है।

रणजीत का स्वर गम्भीर हो गया—"शशि, मेरा यह दर्द से भरा दिल तुम्हारे कदमों में···।"

'हां हां'—शशि ने टोका, "और तुम्हारे कदमों में पांच रुपये में खरीदे हुए आदमी की लाश !"

चौंककर रणजीत ने पूछा—"क्या मतलब········?"

शशि उठकर बंगले की ओर चल दी।

व्याकुलता से रणजीत ने पुकारा—"सुनो, कहाँ जाती हो ! एक बात सुनो ! एक बार !"

हाथ हिलाकर शशि ने उत्तर दिया—"गुडबाई दर्दे-दिल ?"

दस

जहाँ हसद नहीं

नूरहसन अपने जीवन से सन्तुष्ट था। रेलवे वर्कशाप में पक्की नौकरी और घर पर नेकबख्त बीवी को वह गांव से ले आया था। बुल्लू चौधरी के अहाते में एक छोटा-सा मकान लिये था। मकान छोटा था परन्तु पर्देदार क्वार्टरों के ढंग का। मकान तो एक ही था परन्तु जीने अलग-अलग। ऊपर से छत पर एक ईंट की आदमक़द दीवार बना कर दो मकान बना दिये थे। नूरहसन दाईं तरफ के हिस्से में रहता था। न किसी से लेना न किसी का देना। वर्कशाप में काम और घर पर आराम।

एक सफेद बुरका उसने बीबी के लिए सिलवा दिया था। इतवार, छुट्टी के दिन बीबी को बुरका ओढ़ाकर तीसरे पहर सैर के लिए ले जाता। कहीं किसी खोंचे वाले के पास कोई अच्छा फल या मिठाई बीबी को पसन्द आ जाती तो वह इशारा कर, दो कदम हट कर खड़ी हो जाती और नूरहसन खरीद लेता। घर लौट कर दोनों खाते। दोनों नेकबख्त और सआदतमन्द। अपने काम और अल्लाह से वास्ता। जब कभी इतवार को भी वर्कशाप में ड्यूटी पड़ जाती तो सआदत की बीवी को बहुत बुरा लगता। खैर, नौकरी का मामला था, मजबूरी थी।

सआदत नहाने के बाद अपनी छत के हिस्से में मचिया पर बैठ धूप में बाल सुखाकर कंघी कर रही थी। बीच-बीच में वह नीले आकाश में उड़ती रंग-बिरंगी पतंगों के दाँव-पेंच भी देखती जाती। सामने की छत पर हिन्दू

स्त्रियाँ चटाई बिछा कर बड़ियां तोड़ रही थीं । जाड़े की धूप में अलसाकर वह धीमे-धीमे कंघी से अपने बाल और उँगलियों से कंघी को साफ कर रही थी । किसी की आँखें वहां पहुँच कर उसे छेद नहीं सकती थीं । यों हीं बाईं ओर नजर उठा कर उस ने देखा तो दीवार के परे से दो आखें उस की ओर देख रही थीं । घबरा कर उठी और भीतर भाग गई । भीतर जाते-जाते उस ने एक बार फिर घूम कर देखा, सचमुच ही वह उस की ओर देख रहा था ।

सआदत जानती थी, जो लोग दूसरों की औरतों को देखते हैं वे भले-मानस नहीं होते । बदमाशों की नजर कैसी होती है, यह तो वह ठीक से नहीं जानती थी परन्तु इस नजर में कोई तेजी न थी जिस से वह डर जाती । फिर भी उसे कोई क्यों देखे ? उस ने भीतर बैठ कर चोटी बांधी और दुपट्टा सिर पर लिया । कंघी में से निकले बाल पड़नाले की मोरी में फेंकने गई तो उस ने एक बार फिर जानना चाहा, अब तो नहीं देख रहा ? वह देख रहा था पर उसी तरह, प्रतीक्षा की आतुर नजर से, झपट लेने वाली तीखी नजर से नहीं ।

जाने दो अपने को क्या—सआदत ने मन में कहा और चूल्हा जला कर खाना पकाने में लग गई । यह उसे मालूम था कि उस ओर औरत कोई नहीं रहती ; कभी देखी जो नहीं ।

रात में उस ने मियां से कोई जिक्र नहीं किया, जरूरत भी न थी । खामुखाह उस के दिल को बुरा लगता । दूसरे-तीसरे दिन उधर उसे कोई दिखाई न दिया लेकिन चौथे दिन उधर से सूखने डाला हुआ एक तहमत उड़ कर इधर आ गिरा । सआदत ने सोचा—होगा अपने को क्या ? फिर खयाल आया—बेचारा यों ही परेशान होगा ! तहमत उठा, तहा कर उस ने दीवार पर रख दिया परन्तु उधर देखा नहीं । बाद में उसे मालूम हो गया कि उधर से देखने वाली आंखें सुबह नौ बजे से पहले और शाम को पाँच बजे के करीब ही देखती हैं । होगा अपने को क्या ? उस ने सोचा लेकिन आंगन में जाने पर वह देख लेती थी, देख तो नहीं रहा ? अपने पर्दे का खयाल जो था ।

एक दिन 'उस ने' सलाम कर दिया । सआदत शर्मा गई । ऐसे तो नहीं करना चाहिए—उस ने सोचा लेकिन बुरी बात तो कोई की नहीं । शिकायत

की तो कोई बात है नहीं । होगा, अपने को क्या ? मन ही मन उस ने कहा---है तो मर्द पर, सीधा है ।

नूरहसन के वर्कशाप से लौटने का समय होता तो सआदत खिड़की की राह चिक से देखने लगती थी । उस दिन हसन को देर हो गई थी । वह बड़ी चिन्ता से राह देख रही थी और जब नूरहसन दूर से लकड़ी टेकता, लंगड़ाता आता दिखाई दिया---सआदत के सिर मानो पहाड़ टूट पड़ा । जीने से लपक कर दौड़ती हुई नीचे गई ।

"हाय हाय ! यह क्या हुआ ?"-- वह मियां से लिपट कर रोने लगी । उसे सहारा दे जीने पर चढ़ा कर ऊपर लाई । नूरहसन के घुटने पर एक भारी बेलन गिर आने से चोट आ गई थी । घुटना सूज गया था । आधीरात तक सआदत ने नमक की पोटली से सेंक किया और फिर तकिये से रुई निकाल कर पट्टी बांध दी । पति के घुटने को गोद में लिये उस ने सारी रात बिता दी परन्तु घुटना सुबह तक सूज कर दूना हो गया । नूरहसन के लिये हिलना मुश्किल । करे तो क्या ?

चिन्ता से नूरहसन ने कहा---"छुट्टी की अरजी वर्कशाप कैसे भिजवाऊं ?" दवाई तो भला सआदत बुर्का ओढ़ कर पंसारी की दूकान से ला सकती थी । सआदत ने बताया, "दीवार के परे एक मुसलमान भाई रहता है इतना तो कर ही देगा । इस में क्या है ?"

बहुत सोच-समझ कर नूरहसन लकड़ी के सहारे आंगन की दीवार तक पहुंचा और पड़ोसी को पुकार, सलाम कर उस ने अपनी विपता सुनाई ।

बड़ी हमदर्दी से पड़ोसी ने आश्वासन दिया --"तुम खाट पर लेटो । मैं आ कर सब कर देता हूं ।" थोड़ी देर में नीचे से जीने की सांकल खटकी । सआदत को खोलने जाना पड़ा । बुरका ओढ़ कर वह गई और सांकल खोल पड़ोसी से आगे ऊपर चढ़ आई ।

पड़ोसी का नाम था हबीब । यही कोई अठाइस-तीस बरस का । शरीफ, जवान, रेल के दफ्तर का बाबू । उस ने अरजी लिख कर पहुंचा देने की तसल्ली दी और पंसारी के यहाँ से दवाई का सामान और तरकारी मसाला तक बाजार से पहुंचा दिया । शाम को फिर आ कर वह जरूरत की बात पूछ

गया । इसी तरह लगातार तीन-चार दिन तक चला । सआदत ने सोचा भला आदमी है सो तो पहले ही मालूम होता था ।

नूरहसन के घुटने का हाल बिगड़ता ही गया । हकीम ने राय दी—"हस्पताल ले जाओ !"

सआदत रोने लगी । ग़रीब मज़दूर को हस्पताल में कौन जगह देता ? लेकिन हबीब ने अंग्रेज़ी बोलकर सब काम ठीक से करा दिया ।

नूरहसन के घुटने का आपरेशन हुआ । सआदत रोज खाना बना कर तैयार करती और हबीब सुबह-शाम उसे हस्पताल संग ले जाता और लिवा लाता परन्तु सिवा सलाम के कोई बात नहीं । इसके बाद वह खुद अपना खाना बनाता । नूरहसन और सआदत दोनों पड़ोस की तारीफ करते और शुक्रिया अदा करते ।

एक दिन सआदत से न रहा गया । उस ने बुरके की आड़ से कहा—"हस्पताल से लौट कर चूल्हा किस तरह जलाओगे ? अपना आटा पकड़ा देना । तुम्हारे भी दो मण्डे (रोटियाँ) सेंक दूंगी ।"

"क्या तकलीफ़ करोगी ? तुम खुद मुसीबत में हो !" हबीब ने जवाब दिया ।

"मुसीबत तो है ही पर तुम इतना कर रहे हो । इतना कोई क्या दूसरा करता है ? " सआदत हबीब की भी दो रोटियाँ सेंक देती और वहीं उसे खिला भी देती । अब उस से बुरका क्या करे ? यों ही सिर पर दुपट्टा रख लेती और फिर उसने उसे देखा तो हुआ ही था ।

नूरहसन का घुटना आहिस्ता-आहिस्ता ठीक हो रहा था । ईद आ गई । हबीब ईद के लिये कुछ फल-वल लेकर आया । सआदत ने भी उस दिन नये कपड़े पहने थे । आकर हबीब ने कहा -"सलाम ! ईद मुबारिक !"

हँसकर सआदत ने भी 'ईद मुबारिक' कहा । एक रकेबी में पुलाओ निकाल कर उस ने हबीब के सामने रखा और कहा—"खाओ !"

"नहीं "हबीब ने सर हिला दिया ।

"क्यों ?"

"ऐसे ही !"

"खाओ न, आज तो ईद है।"

"हाँ, पर तुमने हम से ईद कहाँ मिली ?"

"हाय अल्लाह"—शर्मा कर सआदत ने कहा, "ऐसा भी कहीं कहते हैं, खाओ न ?"

"जाने दो, नहीं खायेंगे।"—हबीब उदास हो गया।

हबीब के वे सब अहसान सआदत की आँखों के सामने आ गये। कितना भला और सीधा आदमी है। बेबस होकर उस ने कहा—"अच्छा" और शर्मा कर खड़ी हो गई।

हबीब ने ईद मिली और उसका माथा चूम लिया। सआदत के गाल सुर्ख हो गये। उसने आँखें झपका लीं। हबीब ने पूछा—"नाराज हो गई क्या ?" सआदत ने सिर हिला कर इनकार कर दिया।

हबीब ने कहा,—"आओ एक साथ खायेंगे।"

सआदत घबराई लेकिन हबीब के अपने सिर की कसम देने पर उसे मानना पड़ा। दोनों ने साथ खाना खाया।

हबीब सआदत को हस्पताल से वापिस लाता तो वहीं खाना खाकर लौटता। अब वह कुछ देर तक बैठने लगा, कुछ देर बातें होती रहतीं। सआदत ने पूछा—"अपने हाथों चूल्हा फूंकते हो, ब्याह क्यों नहीं कर लेते ?"

हबीब ने कहा—"अपना कोई है ही नहीं। गरीब आदमी हूँ। मेरी कौन फ़िक्र करता है ?" सआदत के दिल में बरछी सी लगी। उस दिन से वह उस से और स्नेह से बात करने लगी। दोनों सुबह-शाम घंटे डेढ़ घंटे भर एक साथ बैठते।

× × ×

नूरहसन का घुटना ठीक हो गया और वह घर लौट आया। सआदत ने अल्लाह का शुक्र किया और पीर की मन्नत पूरी की। अब भी हबीब उनके घर आता-जाता था। नूरहसन जानता था, हबीब अच्छा आदमी है परन्तु पड़ोस की चुगलियों को क्या करे ? उसने सआदत से कहा—"मकान बदल

लें।" सम्रादत ने इन्कार किया, वह कहीं न जायगी चाहे उस के टुकड़े कर दो।

दुखी हो नूरहसन बोला, मैं तुझे तलाक दिये देता हूं फिर जहां चाहे तू खाक फांकना पर सम्रादत न मानी। उस ने उत्तर दिया—"उस के विना वह जी ही नहीं सकती।

क्रोध से नूरहसन की आँखें लाल हो गईं। जिस लाठी को टेक कर वह चलता था उसी से सम्रादत को खूब पीटा। सम्रादत ने मार खाई परन्तु चूं नहीं की। नूरहसन ने धमकी दी—"अगर अब तूने दीवार से झाँक कर बात की तो मैं तुझे कत्ल कर दूंगा और तेरे उस 'यार' को कत्ल कर दूंगा!"

सम्रादत अब आंगन में जाती तो आँखें नीची किये रहती। तीन दिन तक उस ने आँखें ऊपर नहीं उठाईं। चौथे दिन ईंधन लेने वह खुली छत पर गई तो एक पुरजा उस के पैरों के पास आ पड़ा।

जिस दिन नूरहसन की ड्यूटी रात में वर्कशाप में रहती, वह बाहर से ताला लगा कर जाता और आधी रात में लौटता। जाड़ों की रात थी। सम्रादत ऊपर पड़छत्ती में चौके का काम निबटा कर चूल्हे में बची आँच के सामने बैठी आग ताप रही थी। समीप ही हरीकेन लालटेन जल रही थी। कुछ आहट-सी सुन उस ने पीछे घूम कर देखा। दीवार के पास हबीब था। एक मुड़ा हुआ पुरजा सम्रादत की छत पर डाल वह चला गया। सम्रादत का कलेजा धक-धक करने लगा, पुर्जा उठाये या नहीं! रहा न गया। जा कर पुर्जा उठा लाई।

सम्रादत ने पुर्जा खोल कर लालटेन के सामने रख कर पढ़ा। मोटे-मोटे अक्षरों में उस में लिखा था—"प्यारी जान सम्रादत! तुम बड़ी बेरहम हो। तीन दिन से तुम्हारा मुंह देखने को नहीं मिला। आंखें तरस गईं। रात में दस बजे तक ओस में खड़ा तुम्हारी राह देखा करता हूं पर तुम दिखाई नहीं देतीं। आज कसम कर ली है, तुम्हारा मुंह नहीं देख लूंगा तो मुझे लुकमा हराम है। तुम्हारा गुलाम—हबीब।"

सम्रादत झपटती हुई बाहर आई। दीवार पर से उचक कर उस ने देखा—सचमुच हबीब उस के घर की ओर मुंह किए खड़ा था। सम्रादत ने उसे पुकार कर कहा—"पागल हो? खाना क्यों नहीं खाया? तुम नहीं जानते मैं बेबस हूं! जाओ खाना खाओ!"

हबीब ने कहा—"जाने दो।"

"क्यों ?"

"बनाया ही नहीं।"

"ठहरो मैं लाये देती हूं।"

"क्यों, मियाँ कहाँ हैं ?"

"रात की ड्यूटी पर गये हैं।"

"वहीं आ जाऊं, कुछ देर तुम्हारे पास बैठूंगा।"

सआदत ने सिर झुका कर मान लिया।

दीवार कूद कर हबीब सआदत के घर आ गया। सआदत ने कटोरी में दाल और तश्तरी में रोटी हबीब के सामने रख दी। हबीब ने कौर मुंह में रखा ही था कि लालटेन की रोशनी में सआदत के माथे की चोट देख कर उस ने पूछा—"यह क्या ?"

सआदत चुप रह गई।

"मियाँ ने मारा है ?"

सआदत रोने लगी।

हबीब ने खाना छोड़ दिया। उस की आंखों से आंसू गिरने लगे। सआदत अपने हाथों से लुकमे बना उसे खिलाने लगी परन्तु हबीब को मालूम हो रहा था जैसे रेत चबा रहा है।

दोनों खाट पर बैठ बातें करने लगे, फिर लेट गये। उन्हें पता न लगा समय कब और कहाँ बीत गया। जीने में नूरहसन की टेकने की लकड़ी की आहट पा हबीब उठ कर भाग गया

सआदत का रूप और व्यवहार देख नूरहसन को कुछ संदेह हुआ। उस ने पूछा—"हबीब आया था ?"

सआदत रोने लगी। नूरहसन दोनों हाथों में सिर थाम बैठ गया। वह सोच रहा था, क्या करे ? औरत को मारने से फायदा क्या। उस ने जिन्दगी में एक ही बार सआदत को पीटा और वही आखीर भी था। वह दरअसल सआदत को प्यार करता था। उस की सचाई उसे कायल कर देती थी परन्तु जिल्लत की जिन्दगी !

"तूही बता मैं क्या करूँ सआदत" -- उसने पूछा ।

आँखें फ़र्श की ओर झुका सआदत ने उत्तर दिया--"यह जिन्दगी का रोग है, जिन्दगी के साथ जायगा । मैं मर जाऊँ । मैंने कई दफे सोचा मैं कुछ खा कर सो रहूँ । खुदकुशी से डरती हूं । दोजख की आग में जलूँगी !"

"तो फिर ?"--नूरहसन ने पूछा ।

नूरहसन के पैर पकड़ सआदत बोली--"तुम कलमा पढ़ कर मुझे जिबह कर दो ! मैं बहिश्त चली जाऊँगी । वहाँ तुम्हारा इन्तजार करूँगी ।"

एक लम्बी साँस खींचकर नूरहसन खाट पर लेट गया । वह छत की ओर देखता रहा । रात बीत गई । सुबह की सफ़ेदी आकाश पर छाने लगी परन्तु दिन नहीं निकलता था । वह प्रतीक्षा में था । ऊँचे मकानों की छतों पर सूर्य की किरणें फैल जाने पर वह एक लम्बा साँस लेकर उठा । उस की आँखें पत्थर की तरह स्थिर थीं । उस की आवाज धीमी परन्तु दृढ़ थी उसने सआदत की ओर बिना देखे ही कहा--"तू नहा-धोकर पाक-साफ़ हो जा । मैं बाजार से होकर आता हूँ ।" वह जीने से उतर गया ।

सआदत भी अन्तिम निश्चय कर चुकी थी । उठ कर नहाई और ईद के दिन के कपड़े पहन लिये । फिर आँगन में दीवार के पास जा कर उस ने हबीब को पुकारा । उस का स्वर निर्भय था और आँखों में विजय की बावली सी प्रसन्नता ।

"प्यारे, आओ मिल लो !"--उसने स्वयं हबीब के गले में बाहें डाल कर कहा, "घबराना नहीं, फिर मिलेंगे । हम जाते हैं ।"

"कहाँ ?"--हबीब ने आश्चर्य से पूछा ।

"उस दुनिया में''''जहाँ हसद नहीं होता !" हबीब के सिर को सीने पर ले उसने प्यार किया, चूमा और फिर कहा, "बस सलाम !" वह चली गई । हबीब कुछ देर सोचता रहा फिर घबरा कर नीचे गली में दौड़ गया ।

नूरहसन लौट आया । सआदत ने दीवार के पास खाट पर धुली हुई दोहर बिछा दी थी । कुरान शरीफ सिरहाने रख लिया और लेट गई । नूरहसन ने जेब से उस्तरा निकाला । वह मुंह से कलमा पाक पढ़ता जाता

था और काँपते हुए हाथ से उस्तरे की धार सआदत के गले पर फेरता जा रहा था। सआदत की आँखें मुँदी थीं।

खून की धार बहती अनुभव कर सआदत ने अपनी उँगली तर कर दीवार पर अल्हड़ अक्षरों में लिख दिया—"हबीब!" और दूसरी बाँह नूरहसन के गले में डाल कर उसका माथा झुका कर चूम लिया।

जीने में नीचे जोर की भड़भड़ाहट सुनाई दी और फिर धक्के से सांकल उखड़ गई। दूसरे क्षण पुलिस और हबीब सआदत की खाट के पास खड़े थे।

सआदत ने आँखें खोलकर देखा। पुलिस पूछ रही थी—"खून किसने किया?" नूरहसन हाथ में उस्तरा लिये एक ओर खड़ा था। उसका चेहरा बिल्कुल पीला हो रहा था।

सआदत ने उँगली से अपनी तरफ़ इशारा किया। परन्तु खून से भरा उस्तरा नूरहसन के हाथ में था। उस ओर इशारा कर पुलिस ने पूछा—"यह उसके हाथ में कैसे है?"

सआदत के होंठ हिले परन्तु आवाज न निकल सकी। पुलिस ने पूछा—"क्या तुम से छीन लिया?"

सआदत ने आँखें झुकाकर हामी भरी। दूसरे क्षण वे आँखें बुझ गईं।

ग्यारह

नई दुनिया

माथुर के समय पर न आने से सरीन साहब खीझ रहे थे। राखदानी में सिगार की राख झाड़ते हुए मिसेज सरीन की ओर देख कर बोले—"सोसाइटी के बिना कल्चर आ नहीं सकती। इस आदमी को देखो, वायदा किया था कि ठीक पांच बजे आयगा। देख लो, साढ़े पांच बज रहे हैं, अभी तक आप का पता नहीं। मजा यह है कि जनाब हम पर तोहमत लगाते हैं कि हम अपना वायदा पूरा नहीं करते.......वहाँ वैराम जी मेरी प्रतीक्षा कर रहे होंगे।"

कुर्सियों के चारों ओर रखे गुलदाउदी के गमलों पर दृष्टि डाल एक डाली से पीला पत्ता झाड़ते हुए मिसेज सरीन ने पूछा—"वायदा ?.......कौन है यह तुम्हारा मेहमान ?"

"अरे मेहमान क्या"—सिगार से एक कश खींच साहब ने उत्तर दिया, "है एक मजदूर-लीडर। कुछ लोगों ने यह नया पेशा बना लिया है। पहले मजदूरों को भड़का देंगे, फिर उनकी वकालत पर अपना निर्वाह चलायेंगे। यह आदमी जरा कैंड़े का है। खयाल था, उसे यहाँ बुला कर समझाता। समय खराब है। इन लोगों का यही इलाज है। दबाने से उल्टे शोर मचाता है।"

मिसेज सरीन बेबी के लिए स्वेटर बुन रही थीं। बुनाई की एक सिलाई पूरी कर दूसरी आरम्भ करते हुए उन्हों ने पूछा—"तुम्हारे यहाँ यह झगड़े चलते ही रहते हैं।" फिर बंगले की छत से कट कर आती हुई धूप में लहलहाते हुए फूलों की ओर देखकर वे बोलीं—"तुम्हें तो मिल और क्लब से

फ़ुर्सत ही नहीं मिलती। चटर्जी के यहाँ के फूल तुम देखो तो हैरान रह जाओ! एक दिन चलो तो कुछ गमले……"

बरामदे की सीढ़ियों पर आहट पा, अपनी बात छोड़ उन्हों ने उस ओर देखा, खद्दर के मैले से कपड़े पहिने, बगल में कागजों का बस्ता दबाये, एक युवक बैरे के साथ-साथ उन्हीं की ओर आ रहा था। उस ओर देख कुर्सी पर लेटे ही लेटे, सिगार थामे हुए हाथ को बढ़ा सरीन साहब बोले—"आइए कामरेड! बहुत देर कर दी।"—समीप पड़ी कुर्सी की ओर संकेत कर उन्हों ने युवक को बैठने का संकेत किया।

कुर्सी पर बैठ कागजों का बस्ता नीचे घास पर रखते हुए युवक ने उत्तर दिया—"देर तो कुछ हो ही गई थी और कुछ आपके आदमियों ने कर दी। भीतर आने ही नहीं दे रहे थे। समझाया, साहब ने चाय पीने के लिए बुलाया है। उन्हें यकीन ही न आता था।"

"वाह, आप तो इन लोगों के वकील हैं।"—हंसकर सरीन साहब ने चुटकी ली।

"जी, अपना भला चाहने वालों को बहुत कम लोग पहचानते हैं।"—हंसते हुए युवक ने भी प्रत्युत्तर दिया।

हाथ की बुनाई भूल मिसेज सरीन युवक की ओर देख रही थीं। उन से आँखें मिलने पर युवक विस्मय से बोल उठा—"मिस कक्कड़?……आप यहाँ कहाँ?"

टोक कर सरीन साहब बोले—"अब मिसेज सरीन!"

मिसेज सरीन मुस्करा दीं और पुराने परिचय के ढंग से उन्हों ने पूछा—"मिस्टर माथुर आप यहाँ कहां?"

"यों ही! जीवन का चक्कर!……शायद अंग्रेजी की ट्यूशन रखने की जरूरत आपको फिर हो!"—माथुर निस्संकोच अट्टहास कर उठा। बातचीत से सरीन साहब को मालूम हुआ, जब मिसेज सरीन अभी मिस कक्कड़ थीं और आगरे में इंटर की परीक्षा की तैयारी कर रही थीं, कुन्दनलाल माथुर उस समय बी० ए० का विद्यार्थी था और अंग्रेजी की पाठ्य पुस्तकें मिस कक्कड़ को दोहराने उनके यहाँ जाया करता था।

तिपाइयों पर हलकी नीली धारी के मेजपोश बिछे थे। उसी रंग का चाय का सेट बैरा ने लाकर सजा दिया। पेस्ट्री और फलों के स्टैंड दूसरी तिपाई पर रख बैरा अदब से एक ओर खड़ा हो गया। बात आरम्भ करने से पहले साहब ने बैरे को जरा दूर हट कर खड़ा होने के लिए संकेत कर दिया और कामरेड को सम्बोधन कर बोले—"कहिए, फिर काम कैसे चले ?"

सतर्क हो माथुर ने साहब की ओर देख उत्तर दिया—"काम तो आप चला ही रहे हैं।"

"अरे, आप चलने कहाँ देते हैं ?"

"नहीं, ऐसी तो कोई बात नहीं।...आपका अभिप्राय ?"

"देखिए, इसमें पर्दे की कोई बात नहीं। आप मिसेज सरीन के पुराने परिचित हैं। आपसे पर्दा क्या !"—अपनी कुर्सी पर और अधिक पसरते हुए सरीन साहब बोले, "मजदूरों के बिना मिल नहीं चल सकती और मिल के बिना यह साढ़े-तीन हजार मजदूर कहाँ जायंगे ! मिल हमें चलानी है तो जैसे हमें समझ आयगा वैसे चलायेंगे। मजदूरों की कोई उचित शिकायत हो, हम दूर न करें तो कहिए। लेकिन यह नहीं हो सकता कि मिल ही उन के हाथों सौंप दी जाय। सिन्डीकेट की बाईस लाख की पूंजी लगी है, बाईस लाख की ! इस वर्ष ही साढ़े चार लाख की नई मशीनरी मैंने मंगवाई है कि इन विदेशी मिलों के मुकाबिले में काम कर सकें। इस रकम के सूद का ही ख्याल कीजिए ! और फिर यदि हिस्सेदारों को मुनाफा न मिलेगा, देश में औद्योगिक उन्नति हो कैसे सकेगी ! उद्योग के लिए पूंजी कहाँ से आयेगी ? आप तो खुद समझते हैं, मजदूरों की बात दूसरी है। समझते हैं न ?"

माथुर की दृष्टि प्यालों में चाय छोड़ती हुई मिसेज सरीन के हाथों की ओर थी। "जी....." उसने उत्तर दिया, "लेकिन....."

"लेकिन नहीं............" हाथ बढ़ा माथुर को सुनते जाने के लिए संकेत कर साहब कहते चले गए, "आप सुन लीजिए। साढ़े चार लाख की जो नयी पूंजी लगाई गई है, उसे कुछ करना होगा या नहीं ? उसे लगभग पांच सौ मजदूरों का काम करना चाहिए। मशीनरी का तो अर्थ ही यह है कि मनुष्य का काम लोहा करता है और सोसाइटी को लाभ होता है। समझिए हम पांच सौ मजदूरों का काम मशीन से लेकर दूसरे कारोबार के लिए मजदूर

मुहय्या करते है। और देखिए, इस मिल पर जितने कम आदमियों का बोझ होगा, उन्हें अधिक मजदूरी दी जा सकेगी। समझे …… ?"

मिसेज सरीन ने दोनों के सामने एक-एक प्याला बढ़ा दिया और आवश्यकतानुसार चीनी के लिए चीनीदानी आगे कर दी।

प्याले में चम्मच से चीनी मिलाते हुए माथुर ने उत्तर दिया—"आपका कहना समझा परन्तु…"

उन्हें और सुन लेने का संकेत करते हुए साहब कहते चले गये - "मजदूरों और मालिकों के हित एक हैं। यह तो गांधी जी भी मानते हैं। उनकी अवस्था सुधारने का प्रयत्न हम लगातार कर रहे हैं। उनके लिए डिस्पेंसरी, उनके बच्चों के लिए स्कूल, खेलने के लिए जगह हम देते हैं। रहने के लिए हवादार क्वार्टर बनवा दिये है ! इन सब कामों के लिए एक इँचार्ज भी हमने रखा है। उसे हम चालिस रुपया देते है परन्तु वह कुछ ढंग का आदमी नहीं। यह काम है सेवा का। इस काम के लिए ऐसा आदमी हो जिस में सेवा भाव हो। तनख्वाह की ऐसी कोई बात नहीं। हम पचास-साठ बल्कि सत्तर-पचहत्तर तक दे सकते हैं। आप कोई ऐसा आदमी बताइये जिस मे सेवा हो, जिस पर मजदूरों को विश्वास हो। यह काम तो है वास्तव में आप जैसे आदमियों के करने का !"

पेस्ट्री की प्लेट माथुर की ओर बढ़ाकर वे अपना चाय का प्याला पीने लगे। सरीन साहब की बात से माथुर के चेहरे पर हल्की-सी मुस्कराहट फिर गई। आरम्भ में "लेकिन…" कह कर जिस उत्साह से वह उन की बात का उत्तर देने के लिए तैयार हुआ था, वह अब उसे व्यर्थ जान पड़ा परन्तु निबाह के लिए बोला—"आप का फर्माना ठीक है लेकिन सेवा के सम्बन्ध में अलग-अलग विचार हो सकते हैं।" मिसेज सरीन की खद्दर की महीन साड़ी की ओर देख उसने जरा मुस्कराकर कहा—"मिसेज सरीन खदर की साड़ी पहन देश की सेवा करती हैं और आप मिल चला कर देश का भला करते हैं।"

चाय की पहली प्याली वे लोग समाप्त कर चुके हैं, यह देख बैरा प्यालियाँ उठा ले जाना चाहता था। माथुर ने बेतकुल्लफी से कहा—"नहीं, अभी एक प्याली और लूंगा !"

"अवश्य"—कहकर मिसेज सरीन ने पास रखी हुई साफ प्यालियों की

ड़े की ओर हाथ बढ़ाया । कुछ झेंप कर माथुर को याद आया, बड़े आदमियों के यहाँ चाय की हर प्याली के लिए नयी प्याली इस्तेमाल की जाती है ।

नया सिगार सुलगाते हुए सरीन बोले --"खद्दर का विरोध हम नहीं करते । इस गान्धी जयन्ती पर हमने खद्दर की पाँच सौ की हुण्डियां खरीदी हैं । देश में उद्योग-धन्धे नहीं हैं इसलिए बेकारी को रोकने के लिए खद्दर भी अच्छी चीज है ।"

'नहीं साहब"—माथुर ने कहा, "मेरा अभिप्राय खद्दर के विरोध से नहीं । मतलब है सेवा से ! मजदूरों के लिए रात्रि पाठशाला खोल कर या उन्हें दवाई बांट कर भी उन की सेवा की जा सकती है । दूसरा तरीका है कि वे सहायता के लिए किसी का मुंह न ताकें स्वयम् मालिक बन जायं...... ...."

विस्मय से आँखें फैला कर कुर्सी से उठते हुए सरीन साहब ने कहा---"ओह ! सोशलिज्म, क्या कहते हैं; समाजवाद !"—माथुर के उत्तर की प्रतीक्षा किये बिना ही उन्हों ने कहा, "हाँ, हाँ, तो वह तो मजदूरों और मालिकों, दोनों के ही हित का ध्यान में रख कर हो सकता है कि दोनों में किसी तरह झगड़ा न हो । जैसे अहमदाबाद में मजदूर-महाजन सभा काम कर रही है वैसे ही आप को भी करना चाहिये ! हाँ, मेरा एक बहुत जरूरी अपाइंटमेण्ट साढ़े-पांच बजे का था इसीलिए आप से पांच बजे आने के लिये अर्ज की थी........"

मिसेज सरीन को सम्बोधन कर बोले—"आप लोग तो परिचित हैं ही । कामरेड की खातिर अच्छी तरह से हो !" माथुर की ओर देख उन्हों ने बीच में ही जाने के लिये बाध्य होने के कारण क्षमा मांगी और धुंआ छोड़ते हुए चल दिये । कुछ ही कदम गये थे कि लौट कर उन्हों ने मिसेज सरीन की ओर देख कर पुकारा, "देखना !"

मिसेज सरीन ने उठ कर बात सुनी । बहुत धीमे स्वर में साहब बोले—"इसे समझाने की कोशिश करना । यह नौकरी कर ले तो अच्छा है । सौ-सवा-सौ रुपये तक भी कोई बात नहीं !"

लौट कर माथुर से कुछ और खाने का अनुरोध कर मिसेज सरीन बोलीं —"छः बरस बाद देखा आप को ! कहाँ रहे आप ? आपने आगरा कब छोड़

दिया ? कानपुर में आप कब से है ? हम लोग तो यहाँ दो बरस से हैं। अढ़ाई बरस हुए बी० ए० की परीक्षा मैंने दे दी थी। साहब भी विलायत से लौटे थे। हमारा विवाह हो गया। हमारी एक बेबी है, नौ महीने की। बड़ी स्वीट (प्यारी) है। आया ले गई है घुमाने, अभी आ जायगी थोड़ी देर में। आप क्या यहीं रहते हैं ? कभी मालूम ही न हुआ। हम लोग कहीं आते-जाते भी बहुत कम हैं। कभी हुआ खद्दर-भण्डार वाले मुझे पकड़ ले जाते है। इन्हें तो मिल और क्लब से ही फुर्सत नहीं मिलती। इन की जगह पहले एक योरुपियन काम करता था दो हज़ार पर और मिल को सदा घाटा। इन की बात यह है कि अपना काम किसी पर नहीं छोड़ते। हिस्सेदारों के लाभ के लिये अपनी तनखाह भी पन्द्रह सौ कर दी है। मुनाफे में तो बात यह है कि जैसा दूसरों का, वैसा इन का ! मेहनत तो इन्हें ही करनी पड़ती है; तिस पर झगड़े-हड़तालों का डर बना रहता है।"

एक ओर रखी हुई सिलाइयों को उठा कर बुनाई आरम्भ करते हुए उन्होंने पूछा—"आप यहाँ क्या करते हैं ? पिता जी क्या आगरे में ही हैं ?"

"पिता जी का देहान्त हो गया। मां वहीं है।" - माथुर ने उत्तर दिया, "कहने लायक तो मैं कुछ नहीं करता, यों ही मजदूरों में रहता हूं।"

इस विषय में आगे पूछना उचित है या नहीं, यह खयाल कर मुस्करा कर उन्हों ने पूछा—"आप की वाइफ ?"

"नहीं, बस मां है।"

"तो फिर उन की चिन्ता तो आप को होगी ?"

मिसेज सरीन के इस सौहार्द से माथुर को छः वर्ष पूर्व का अपना-जीवन याद आ गया। जब वृद्ध माता-पिता के साथ घर में रह कर वह अपना भविष्य बनाने का यत्न और चिन्ता किया करता था। उस समय एक ही चिन्ता थी, बड़ी से-बड़ी परीक्षा पास कर, बड़ी नौकरी पा कर वह सुख से रह सके। प्रत्येक संध्या वह दो मील चल कर मिस कक्कड़ को अंग्रेजी की ट्यूशन पढ़ाने कक्कड़ साहब के बंगले पर जाता था। उसे याद हो आया, उस समय मिस कक्कड़ दुबली-पतली लड़की थी। परिश्रम से पाठ याद करतीं थीं। वे भी अपने भविष्य की तैयारी कर रही थीं। बी० ए० पास कर लेने के बाद पन्द्रह सौ रुपये मासिक पाने वाला तथा मिल का मालिक पति पाकर

उन का जीवन सफल हो गया ! और वह स्वयं ?........बुजुर्गों का खयाल है वह अपना जीवन बरबाद कर रहा है परन्तु उस ने भी अपने विचार से एक मार्ग चुन लिया है, उचित समझ कर ।

पिछला इतिहास पलक मारते में माथुर की स्मृति में फिर गया । मिसेज सरीन उत्तर की प्रतीक्षा में थी । बहुत दिन बाद, पुराने जीवन के परिचित की सहानुभूति ने उसे गहरी स्मृति में उलझा दिया । उसने कहा—"पिता जी का देहान्त हो गया और कुछ ऐसे ढंग से हुआ कि मेरे विचार बदल गये।"

अपनी ग़रीबी के स्मरण से कुछ संकोच अनुभव न कर मिसेज़ सरीन की आँखों में देखते हुए वह बोला —"आपको याद होगा हमारी आर्थिक अवस्था अच्छी न थी । पिता जी स्कूल-मास्टरी करते थे । तेइस वर्ष तक उन्होंने नौकरी की परन्तु उनकी तनख़ाह चालीस से अधिक न बढ़ सकी । उस बुढ़ापे में भी वे आपके भाई को उर्दू पढ़ाने के लिए प्रतिदिन चार मील का चक्कर लगाते थे कि दस रुपये और कमा सकें । मैं भी आपको ट्यूशन पढ़ाने आता था कि कालेज का खर्च चल जाये । चाहता था, किसी प्रकार एम० ए० पास कर लूँ । पास कर लेना कुछ कठिन न था । मुझे शौक़ भी था और वजीफ़ा भी मुझे मिलता था ।"

मिसेज़ सरीन की सफ़ेद कोमल ऊँगलियाँ बसंती रंग की ऊन को लिये तेज़ी से गुंथ रही थीं परन्तु उन के कान माथुर की बात की ओर थे । माथुर ने कहा :—

"शक्ति से अधिक परिश्रम करने से पिता जी बीमार हो गये और बीमारी में दवा न मिल सकने के कारण मर गये ।"—मिसेज़ सरीन के चेहरे पर करुणा की छाया फैल गई । माथुर कहता गया, "बात बिल्कुल मामूली है । इस देश या संसार में प्रतिदिन ही अनेक ऐसी घटनायें होती ही रहती हैं । हमारा ध्यान उस ओर नहीं जाता । वे मेरे पिता थे इसलिये वह घटना मुझे चुभ गई । हुआ यह कि काम की अधिकता और खूराक की कमी से पिता जी का रक्त पतला पड़ने लगा । हृदय की बीमारी ज़ोर पकड़ गई । इधर-उधर इलाज कराया । जितने साधन थे, सब कुछ किया । माँ का थोड़ा बहुत गहना था, वह भी बेच डाला । लेकिन उस से कुछ न बना । डाक्टर को आप जानती होंगी । उन्होंने दया कर फीस न ली और दवाई बताई ।

सोलह इंजेक्शन लगाने की राय उन्होंने दी। दवाई आगरे में 'डाब्सन कम्पनी' के यहाँ मिल सकती थी। दवाई की कीमत उन्होंने माँगी फ़ी नली २२) । कीमत सुनकर मेरी आँखों के सामने अँधेरे में १९२) चाँदी के गोल-गोल टुकड़ों की तरह नाचने लगे। १९२) का प्रबन्ध मैं कर न सका। पिता के प्राण बचा सकने वाली दवाई मौजूद थी परन्तु पैसे न थे। पिता का मन रखने के लिये हकीमों के यहाँ से अर्क ला-लाकर उन्हें पिलाया परन्तु मैं जानता था, वे शनै-शनै: समाप्त हो रहे हैं।"

मिसेज़ सरीन ने बुनाई की सिलाइयाँ एक ओर रख दीं। बटुए से एक रूमाल निकाल मुख से कुछ कहे बिना उन्हों ने आँखें पोंछ लीं। माथुर ने कहा—"मुझे अफ़सोस है यह सब सुनाकर मैंने आप को दुखित किया परन्तु यह हुआ ही और प्रतिदिन होता है। इस बात का दुःख नहीं कि पिता की मृत्यु हो गई। पिता तो सब के मरते हैं परन्तु वे अभी कुछ दिन जिन्दा रह सकते थे क्यों कि दवाई मौजूद थी। आप सोचिये, दवाई 'डाब्सन कम्पनी' की आलमारी में रखी रही इस प्रतीक्षा में कि किसी का खून पतला पड़े, कोई मरने लगे तो १९२) उन्हें दें। मनुष्य के प्राणों की चिन्ता किसी को नहीं, १९२) की चिन्ता है।"

मिसेज़ सरीन ने खाँस कर एक बार और आँखें पोंछी। बुनाई की सिलाइयाँ एक ओर रख गाल पर हाथ रख करुण स्वर में वे बोलीं—"भगवान उनकी आत्मा को शान्ति दे"—और वे तन्मयता से माथुर की बात सुनने लगीं।

"आप इस बात को जाने दीजिये"—कहता चला गया, "कि मेरे पास या मेरे पिता के पास १९२) नहीं थे। प्रश्न यह है कि पिता जी ने तेइस वर्ष तक स्कूल में लड़कों को पढ़ाया। तेईस वर्ष तक समाज की यह सेवा करने के बाद भी उनका यह अधिकार न हुआ कि बीमारी में जरूरी दवाई उन्हें मिल सके? उस समय 'डाब्सन कम्पनी' के प्रति मुझे बहुत घृणा हुई परन्तु 'डाब्सन कम्पनी' का ही क्या दोष? दवाइयों का भण्डार उन्हों ने बीमारों की प्राण-रक्षा के लिए एकत्र नहीं किया, पैसा कमाने के लिये एकत्र किया है। आप की मिल करोड़ों गज कपड़ा बुनती है लेकिन इसलिए नहीं कि नंगे कपड़ा पा सकें बल्कि इसलिये कि मिल के मालिक पैसा कमा सकें!"

एक दीर्घ निश्वास छोड़ कर मिसेज सरीन ने स्वीकार किया—"इस संसार में कितनी निर्दयता है ?"

माथुर ने पूछा —"निर्दय कौन है ? ...उस समय मैंने सोचा, मैं क्यों पढ़ रहा हूँ ? हाँ, मैं आपको पढ़ाने क्यों आता था ? कुछ आप की भलाई के विचार से तो नहीं ! इसलिये कि आपके यहाँ से मुझे दस रुपये मिल सकते थे। मेरे पड़ोस में बीसियों लड़के-लड़कियाँ थीं जिन्हें पढ़ाया जाना चाहिये था परन्तु वे दस रुपये नहीं दे सकते थे इसलिये पढ़ाने का ख्याल मुझे नहीं आया...।"

मिसेज सरीन ने टोक दिया—"नहीं जी, ऐसी क्या बात है ; दस रुपये क्या होते हैं ! आपने मेरे लिये बहुत परिश्रम किया है। ...मैं आपकी बहुत कृतज्ञ हूँ।"

"सो आप की दया है"—माथुर ने उत्तर दिया, "समृद्धि में पली हैं। संकीर्णता आप से दूर रही है इसलिये आप उदार हैं परन्तु मैं पढ़ाई किस लिये कर रहा था ? इसलिये कि नौकरी कर सकूं। समाज के मनुष्यों के लिये कुछ कर सकने का भाव तो मेरा था नहीं। ऊँची परीक्षा देकर मैं अधिक योग्य बन जाना चाहता था ताकि दूसरों की अपेक्षा मुझे अधिक अच्छी नौकरी मिल सके। मनुष्य-समाज में सब जगह परस्पर यही होड़ और द्वन्द्व चल रहा है। व्यापार का अर्थ लोगों की आवश्यकता पूरा करना नहीं बल्कि उनकी जेब से पैसा खींचना है। नौकरी का प्रयोजन भी यही है। हमारे समाज में शिक्षा और पढ़ाई का प्रयोजन है, दूसरों को पीछे हटाकर अपने लिये स्थान बनाने की योग्यता प्राप्त करना !"

सिलाइयाँ उठाकर दुबारा बुनाई शुरू करते हुए सहानुभूति के स्वर में मिसेज सरीन ने कहा—"यह दुनिया है ही ऐसी।"

"है तो"—परन्तु इसका अर्थ हो जाता है कि इस दुनिया में सब लोगों के लिये स्थान नहीं है। दुनिया में मनुष्यों की सब आवश्यकताओं को पूरा करने योग्य साधन तो मौजूद हैं, ऐसे साधन और अधिक पैदा कर सकने की शक्ति भी मौजूद है पर उस शक्ति का उपयोग इस काम के लिये नहीं होता। जिन लोगों के हाथ में शक्ति है, वे मनुष्य की इस शक्ति को अपना प्रभाव या पूंजी बढ़ाने के काम में ही लगाते हैं, जनता के हित में नहीं। जनता परिश्रम

करके भी कंगाल रहती है बल्कि उन्हें बेकार बना कर परिश्रम करने का अवसर भी उनसे छीन लिया गया है। यह दुनिया स्वयम् अपना सर्वनाश कर रही है।"

माथुर की बात मिसेज सरीन की समझ में आई या नहीं, या बुनाई करती हुई वे कुछ और ही सोच रही थी परन्तु उस के स्वर की तरलता से द्रवित होकर उन्होंने कहा—"यह दुनिया तो ऐसी ही है। मनुष्य तो भगवान की दया से जीता है परन्तु जीवन में रुपये पैसे की आवश्यकता तो होती ही है। इसी कारण आपके पिता जी को इतना कष्ट हुआ। अब आप कुछ ऐसा कर लीजिये कि आमदनी हो। आपकी माता जी हैं। उन्हें वृद्धावस्था में आराम मिलना चाहिए।"—मुस्कराकर वे बोलीं, "और फिर आप विवाह कर लीजिये। साहब आप से जिक्र कर तो रहे थे, मजदूरों के हित के कामों के लिये मिल में एक आदमी की आवश्यकता है। मेरा ख्याल है, आप को तो वे सौ रुपया तक दे देंगे। तनख्वाह तो कम है परन्तु फिलहाल उतना ही सही। क्या ख्याल है आपका?"

माथुर की मुस्कराहट का अभिप्राय अनुमति समझकर मिसेज सरीन भी मुस्करा देना चाहती थी परन्तु वह बोल उठा —"आप बुरा न मानिये, देखिये, मेरे सौ रुपये की नौकरी पा जाने से क्या होगा? हम जिस दुनिया की बात कर रहे थे, वह तो जहाँ की तहाँ रहेगी! देखिये, चैन किसको है? जिनके पास सब कुछ है, उन्हें चैन नहीं। उन्हें भय है कि लोग उनका धन छीन लेना चाहते हैं। सरीन साहब १५००) और मिल में लाखों के शेयरों के बावजूद फिक्र में रहते हैं। उन्हें फिक्र है, कि साढ़े तीन हजार मजदूरों को वश में कैसे रखा जाय?...बाजार में दूसरी मिलों से कैसे होड़ की जाये? गरीबी में दिन गुजारने वाले लोग सदा चिन्ता में रहते हैं कि वे रोटी का एक टुकड़ा कैसे झपट सकें? संकट सब के सामने है। प्रत्येक मनुष्य अपने ही संकट की बात सोचता है। सब लोग अपना संकट दूसरों के कंधों पर डाल बच जाना चाहते हैं। दूसरे भी ऐसा ही करना चाहते है। हम यह नही सोचते कि संकट वास्तव में समाज भर का साझा है किसी एक व्यक्ति का नहीं। इस का उपाय व्यक्तिगत रूप से नहीं, सामाजिक रूप से ही हो सकता है। सामूहिक प्रयत्न से व्यवस्था को बदलने की जरूरत है।

"परन्तु आप भी व्यक्ति हैं"—माथुर को टोक कर मिसेज सरीन बोलीं।

हूं तो मैं भी एक व्यक्ति ही परन्तु समझ गया हूं कि मेरा संकट सामाजिक है और सामाजिक रूप से ही उस का उपाय हो सकता है। समाज के सब से बड़े अंग मजदूर वर्ग को उन की स्थिति, अधिकार और शक्ति की बात समझाने का यत्न करता हूं। समाज का यही अंग सामाजिक व्यवस्था में परिवर्तन कर सकता है। सरीन साहब मुझे सौ रुपये की तनखाह में खरीद लेना चाहते हैं......"

मिसेज सरीन का चेहरा लज्जा से गुलाबी होता देख माथुर क्षमा याचना के स्वर में बोला—"आप को बुरा मालूम हुआ परन्तु बात यही है। वे अपनी मिल का हित इसी बात में समझते हैं कि मजदूर उन की दया पर निर्भर रहें। आप ही बताइये, मनुष्यता के नाते क्या यह अधिक अच्छा नहीं कि सब लोग अपने परिश्रम का पूरा फल पा सकें और आत्म-निर्भर हों ?"

"आप ठीक कह रहे हैं"—मिसेज सरीन बुनाई पर से दृष्टि उस की ओर उठा कर बोलीं, "परन्तु मजदूरों और मालिकों में सद्भाव तो होना ही चाहिए। गांधी जी ने भी कहा है।"

माथुर ने उग्र स्वर में उत्तर दिया—"सद्भाव हो कैसे सकता है ? जब मालिक होने के नाते कोई दूसरों के परिश्रम से लाभ उठायेगा तो उसे दूसरों को दबा कर रखना ही पड़ेगा और दबे हुए लोग अवसर मिलने पर जरूर लड़ेंगे।"—मिसेज सरीन चुपचाप बुनाई करने लगीं।

कुछ हतप्रतिभ हो कर माथुर बोला—"मैं बहुत बक गया। मुझे कुछ अधिक बोलने की आदत हो गई है। अब आज्ञा दीजिये चलता हूं। अपने मन के खयाल में कुछ अप्रिय बातें कह गया हूं, ख्याल न कीजियेगा। साहब से आप शिकायत करेंगी तो वे और भी नाराज होंगे।"—अपना बस्ता उठा कर माथुर चलने लगा। आत्मीयता से उसे और बैठने के लिए कह, साहब के सिगारों की ओर संकेत कर मिसेज सरीन ने पूछा, "पीते हैं आप, लीजिये न !"

एक सिगार ले उन्हें धन्यवाद देते हुए माथुर बोला—"आज तो आपने खूब खिला-पिला दिया परन्तु अब मुझे आप पहचान गईं। और कभी तो

बुलाइयेगा नहीं, इसीलिए मौके से मैंने भी जितना सामने आया, खा लिया। अब चलूं; कुछ लोग मेरी प्रतीक्षा कर रहे होंगे।"

अनुरोध से मिसेज सरीन ने आग्रह किया—"नहीं, आप अवश्य आइये। कहाँ रहते हैं आप ? ... कभी बुलाना हो तो ?"— उन्होंने पूछा।

"सो साहब खूब जानते हैं" – माथुर ने हंस कर उत्तर दिया, "यहीं, मजदूरों के इस या उस मुहल्ले में ढूंढने पर मिल जाऊंगा।"

माथुर के चले जाने के बाद मिसेज सरीन सोचने लगीं—"अदभुत जीव है। जान-बूझ कर संकट और कंगाली झेल कर भी वह खुश है ! किसी एक नई दुनियाँ के खयाल में !"

क्लब से लौट कर साहब ने माथुर की बाबत पूछा। लम्बी-चौड़ी कहानी न कह कर मिसेज ने उत्तर दिया —"नहीं, वह नौकरी नहीं करना चाहता।" फिर कुछ सोच कर वे बोलीं, "शायद समझाने से मान भी जाय ! उस के घर की हालत बहुत खराब है।"

साहब ने माथुर के विषय में फिर कोई जिक्र नहीं किया परन्तु मिसेज को प्रायः उस की याद आ जाती। सोचतीं, कितना परिवर्तन उस में आ गया है ? उस समय कभी खयाल भी न हो सकता था कि वह ऐसी बातें करने लगेगा। तब वह कितना सीधा और चुप था। उन्हें याद आया, किसी दिन उस के पढ़ाने आने पर मां कह देतीं, आज शोभा नहीं पढ़ेगी, बाजार जा कर फलां काम कर आओ ! और वह चुपचाप चला जाता। उस समय उन का स्वास्थ्य सुधारने के लिये पिता जी ने कोठी के लान में टेनिस का कोर्ट बनवा दिया था। हुकुम होने पर वह कोर्स की किताब पढ़ाना छोड़कर उन्हें टेनिस खिलाने लगता। कभी इच्छा होने पर पिता जी पढ़ाई बन्द कराकर स्वयम टेनिस खेलते रहते। उस समय वह चुपचाप आज्ञाकारी मज़दूर की भांति था। छरहरा और स्वस्थ अब जैसा ही परन्तु दैन्य और अधीनता का एक भाव उसके व्यवहार और चेहरे पर छाया रहता था।

एक दिन वह उसके साथ टेनिस खेल रही थीं कि सहेली कृष्णा आ गई। मजाक की तो उसकी आदत ही थी। परन्तु उस मजाक की ओर किसी ने ध्यान नहीं दिया क्योंकि माथुर की स्थिति के कारण वैसी बात की सम्भावना न थी। तब वह छोटा आदमी था। है तो अब भी परन्तु अब छोटेपन के दैन्य

और अधीनता की वह छाप उस के चेहरे पर से उड़ गई है। उस समय उन में और माथुर में वैसा ही अन्तर था जैसा घोड़े और गधे में या कबूतर और गौरैया में होता है। ऐसा जान पड़ता है, उस अन्तर को वह लाँघ गया है। अब तो वह बिलकुल समानता के दावे से बातें करता है। उसे कितना बुरा मालूम हुआ कि सौ रुपये में उसे खरीदने का यत्न किया जा रहा है, जैसे उस रोज प्रदर्शनी में बेबी के लिये हमने वह चीनी पिल्ला पौने-तीन सौ में खरीदा था।······ वह कितने अधिकार और समझदारी से बात करता है ? मालूम होता है, पढ़ता बहुत है। याद कर उन्हें दुख होता कि सरीन साहब ने माथुर से कितनी उपेक्षा से बातचीत की। साहब का कुर्सी पर पसरा हुआ दोहरा बदन, फूले-फूले कल्ले, सिगार का धुआँ उड़ाता उन्हें दिखाई देने लगा। माथुर की कुछ न सुन वे लगातार अपनी ही सुनाते जाना चाहते थे, जैसे कोई बिग-ड़ैल बच्चा हो और माथुर गम्भीरता से मुस्कराकर सुनता गया ; कह लेने दो इन्हें········।

जरा सा मुस्कराकर उसने कहा था —"आप मुझे सौ रुपये में खरीद लेना चाहते हैं ? उसके मस्तिष्क में कितनी बातें भरी हुई हैं ? यदि वे पूरा हो सकें तो फटे हाल संसार का रूप ही बदल जाय। गांधीजी भी यही कहते हैं। गांधी जी की तरह उसे भी अपने लिये कुछ नहीं चाहिये। वह मजदूरों के घरों में रहता है। आगरे में उस की माँ शायद भूखी मरती होगी ! कहता है, समाज की समस्या को वह अपनी समस्या के रूप में देखता है और सरीन साहब अपनी समस्या को समाज की समस्या के रूप में देखते हैं। साहब की कुर्सी पर पसरी भारी भरकम देह और माथुर का उड़ने के लिये तत्पर बाज का-सा शरीर उन्हें आमने-सामने दिखाई देने लगे। माथुर के प्रति साहब का व्यवहार उन्हें सम्मानजनक नहीं लगा। उन्होंने सोचा साहब को ऐसा नहीं करना चाहिये था।····जैसे सरीन और माथुर में कुश्ती होने जा रही है। माथुर निर्बल है इसलिए मिसेज की सहानुभूति उस की ओर है। साहब तो अपने हैं ही·······?

माथुर के विषय में फिर कोई चर्चा बहुत दिन तक नहीं हुई परन्तु समा-चार पत्रों में अपनी मिल के मजदूरों के बारे में जब भी कोई चर्चा वह देखतीं, खद्दर के मैले कपड़े पहने, बगल में बस्ता दबाये माथुर की मूर्ति उन की आँखों के सामने आ जाती। अखबारों में चर्चा चल रही थी —'भारतभूषण

मिल ने नई मशीनरी मँगाई है और फ़ालतू मज़दूरों को कुछ समय के लिये हटा देना चाहती है। मिल-मज़दूर मिल के इस फ़ैसले के विरुद्ध हड़ताल करने की धमकी दे रहे हैं।

साहब बहुत विक्षिप्त से रहते थे। कोठी पर दूसरे-तीसरे कोई-न कोई पंचायत होती रहती। कभी दावत होती, कभी चाय। मिसेज़ प्रबन्ध करते-करते थक गईं। भाँति-भाँति के लोग आते, सेठ लोग, साहब लोग और नेता लोग। एक और दिन पिछवाड़े बगीचे में एक आदमी के लिये चाय का प्रबन्ध हुआ। मिसेज़ ने अनुमान किया माथुर आयेगा परन्तु आये, गान्धी टोपी और खद्दर के सफ़ेद बुर्राक कपड़े पहने एक सज्जन। उनसे चुनाव में कांग्रेस के सम्मुख आने वाली कठिनाई का चर्चा चला और फिर तय हुआ कि मिल में हड़ताल हो जाने पर कांग्रेस के प्रधान और कार्य-कारिणी उस में दखल न दें। सज्जन ने आग्रह किया और साहब ने मजबूरी दिखाई। आखिर साहब ने पाँच हज़ार का एक-छोटा सा-चेक सज्जन को भेंट कर दिया।

इन सब विषयों में मिसेज़ सरीन से कोई राय न ली जाती थी परन्तु एक आशंका-सी वे अनुभव कर रही थीं, जैसे भयंकर आंधी से पूर्व आकाश में उड़ने वाले पक्षी सहम जाते हैं। एक भयंकर उपद्रव की आशंका से उन का हृदय बैठा जा रहा था। इस बीच में मोटर पर बाजार आते-जाते उन्हों ने माथुर को मज़दूरों की टोलियों के साथ नारे लगाते हुये जुलूसों में देखा परन्तु उस से बात करने का अवसर न था।

× × ×

भारतभूषण मिल में सवा दो मास से हड़ताल थी। सरीन साहब की परेशानी की हद न थी परन्तु मज़दूरों की ज्यादती के सामने सिर झुकाने को वे तैयार न हुए। मिल को यदि दूसरों की इच्छा के अनुसार चलना है तो उन की मिल्कीयत का अर्थ ही क्या? उन्हें न भूख लगती, न नींद आती। दो-एक बिस्कुट खा 'जिन' का एक पेग ले लेते। चेहरे का रंग पीला पड़ गया और आँखों के नीचे काली छाया फैल गई। यह देख मिसेज़ सरीन का कलेजा कट कर रह जाता। वह सोचतीं, भाड़ में जायं मिलें! अपनी जान अच्छी या

मिलें ? कभी वे सोचतीं, इन मजदूरों का ही सिर क्यों फिर गया है ? मजदूरों का अर्थ उनकी दृष्टि में था 'माथुर' !

साहब भीतर बहुत कम आते । दिन भर टेलीफ़ोन की घण्टी बजा करती । कोठी के नौकर, माली, भंगी बड़ी अजीब-अजीब खबरें लाते । यह खबरें आया की मारफ़त 'मेमसाहब' तक पहुँचतीं । उन्होंने सुना, हजारों मजदूर लाठियाँ लेकर मिल को घेरे हुए हैं । वे मिल को लूट लेने और आग लगा देने की धमकी दे रहे हैं । पुलिस और फ़ौज तोपें-बन्दूकें लेकर मिल पर छावनी डाले हैं । कोठी और मिल के बीच की सड़क से हजारों-लाखों आदमियों के जोर-जोर से चिल्लाने का स्वर सुनाई देता, "इनकलाब जिन्दाबाद ! मजदूरों का राज हो ! पूंजीवाद का नाश हो !" मिसेज सरीन घबरा जातीं, कहीं लोग सचमुच ही कोठी पर चढ़ न आएँ । उन्हों ने बेबी को बाहर भेजना बन्द कर दिया । नौकरों को होशियार रहने की हिदायत कर दी और दो नये गोरखे पहरेदार खुखरी बाँध कर रात में कोठी का चक्कर लगाने लगे ।

बाहर आने-जाने वाले नौकरों ने खबर दी कि हड़ताली मजदूर लाल झण्डे लेकर रात-दिन मिल के दरवाजे पर डटे रहते हैं । किसी को भीतर नहीं जाने देते । कोई मजदूर काम करने के लिए भीतर जाना चाहता है तो हड़ताली उस की राह रोक सामने जमीन पर लेट जाते हैं । साहब के हुकुम से पुलिस धरना देने वालों को पकड़ ले जाती है तो उन की जगह दूसरे आ लेटते हैं ।

जिन मजदूरों को पुलिस पकड़ ले गई उन के औरत बच्चे साहब के पास आकर रोने लगे । साहब ने सब को बाहर निकलवा दिया । मिसेज सरीन गागर में बन्द मछली की तरह किलबिलातीं । कई दफ़े उन का मन चाहा कि इस विषय में साहब से बात करें परन्तु साहब के चेहरे की गम्भीरता देख उन का साहस न हुआ ।

बेबी की तबीयत कई दिन से खराब थी । साहब को उस ओर भी ध्यान देने की फ़ुर्सत न थी । शायद उन्हें इस बात की कुछ खबर ही न थी । मिसेज ने कई दफ़े इस विषय में उनसे कहना चाहा परन्तु क्षण भर के लिए मिलने पर शब्द उन के मुख से बाहर ही न निकल सके । साहब ने डाक्टर कैप्टेन वुड को फ़ोन पर बुला कर बच्ची को दिखा दिया था । एक यूरोपियन नर्स उस की

देखभाल कर रही थी । नर्स ने दो दिन से उन्हें बेबी को दूध न पिलाने दिया था । दूध भर जाने के कारण उनकी तबीयत और भी परेशान हो रही थी ।

पन्सारी की दूकान से कोई चीज ले आने के लिये मिसेज सरीन ने एक नौकर को भेजा था । पुड़िया के कागज ने उनकी दृष्टि खींच ली । कागज पर मोटे अक्षरों में छपा था -"मजदूर समाचार ! यह कागज मजदूर समाचार अखबार का टुकड़ा था उन्हीं की मिल की मजदूर-हड़ताल का चर्चा था । इसमें शिकायत थी कि दूसरे अखबार हड़ताल की बाबत सच्ची खबरें नहीं छापते । उन अखबारों के मुंह रुपया भरकर बन्द कर दिये गये हैं । समाचार था ---

"सवा-सौ मजदूर धरना देने के अपराध में जेल जा चुके हैं । सवा-दो महीने से मजदूरी न मिलने के कारण हजारों मजदूरों के बाल-बच्चे भूख से तड़फ रहे हैं । मिल के डायरेक्टर गिरफ्तार हो जाने वाले और हड़ताली मजदूरों के रोते-बिलखते स्त्री, बाल-बच्चों को खींच-खींच कर क्वाटरों से बाहर निकाल उन में ताले लगा रहे हैं । इस समय जब आप गरम और नरम लिहाफों में अपने बच्चों को सीने से लगा कर सोते हैं, डेढ़ हजार मज-दूर स्त्री-पुरुष, बच्चे पूस की रातों की गहरी ओस में मैदानों में पड़े कुड़-कुड़ाया करते हैं । इन में पचास को निमोनिया हो गया है । डेढ़ सौ के करीब बुखार से मर रहे हैं । यह सब संकट झेल कर भी मजदूर डटे रहेंगे । जब-तक की मिल मालिक साढ़े-तीन-सौ मजदूरों को मिल से निकालने का हुक्म रद्द नहीं कर देते ......। मिल मालिक मजदूरों के परिश्रम से विलास कर रहे हैं । वे उन के ही श्रम से मुनाफा कमा कर उन्हीं की रोटी छीन लें, यह कभी बर्दाश्त नहीं किया जा सकता............।"

कागज के बीचोंबीच मोटे अक्षरों में लिखा था---"भयंकर षड्यंत्र !" और खबर थी:---"मजदूरों में फूट डालने में असफल हो कर मिल मालिकों ने बाहर से मजदूर मंगाये हैं जिन्हें छिपा कर रखा गया है । खबर मिला है कि १७ दिसम्बर की रात को (उस दिन १७ दिसम्बर ही थी) उन्हें मोटरों पर बैठा कर, मिल के मजदूरों के विरोध के बावजूद काम शुरू करने के लिए मिल में ले जाया जायगा । बाहर से बहका कर लाये गये मजदूर हमारे भाई हैं । उन का और हमारा हित एक ही है । उन्हें याद रखना चाहिये कि

मालिकों के हाथ की कठपुतली बन कर वे उसी अवस्था में मिल में दाखिल हो सकेंगे जब वे 'भारतभूषण मिल' के मजदूरों के शरीरों को मोटरों से कुचलते हुए मिल में जाने को तैयार हों।

"हम लोग सभी मजदूरों की रोटी के लिये लड़ रहे हैं। क्या मजदूरों ने अपने परिश्रम से लाखों का मुनाफा मिल-मालिकों को इसीलिये कमा कर दिया है कि वे नई मशीनें ला कर मजदूरों को बेकार कर भूखा मारें? भाइयो, भारतभूषण मिल के मजदूर केवल अपने ही पेट के लिये नहीं बल्कि गरीब जनता मात्र के लिये रोटी कमाने के अधिकार के लिये लड़ रहे हैं। इस लड़ाई में हमारी हार का अर्थ है, हमारी मृत्यु और गरीब जनता का पूंजीपतियों के मुनाफे पर बलिदान हो जाना! हार कर धीरे-धीरे भूखे मरने की अपेक्षा हम मजदूर अपने अधिकार की रक्षा के लिये लड़ते हुए मर जाना पसन्द करेंगे। बाहर से आने वाले मजदूरों की मोटरें हमारे मांस और खून के कीचड़ को लांघे बिना मिल के भीतर नहीं जा सकेंगी। मिल वाले याद रखें मजदूरों पर अन्याय कर के वे उन्हें पालने वाले मजदूरों के प्रति कृतघ्नता के अभिशाप से नहीं बच सकेंगे।" ......क्या देश की आजादी के नारे लगाने वाले कांग्रेसी भाई और जनता चुपचाप यह सब देखती रहेगी...... ?"

कुन्दनलाल माथुर
मंत्री, मजदूर सभा।"

कागज को पढ़ कर मिसेज सरीन के पैर कांपने लगे। माथुर का विद्रूप से मुस्कराता हुआ चेहरा उन की आंखों के सामने नाचने लगा। भोले-भाले दिखाई देने वाले उस चेहरे में कितनी क्रूरता और निर्दयता भरी हुई है। बगल में कागजों का बस्ता दबाये इस आदमी ने कितना बड़ा हत्याकाण्ड मचा दिया है। 'नई दुनिया' का उस का ख्याल कितना भयंकर है? उसे कैसे समझाया जाय? उन की भीगी स्तब्ध आंखों के सामने निमोनिया और बुखार से कराहते, ओस में उघाड़े, भीग कर जाड़े में ठिठुरते हजारों स्त्री-पुरुषों का दृश्य दिखाई देने लगा।.........यह दृश्य धुंधला हो कर उन की आंखों के सम्मुख दिखाई पड़ने लगा, मनुष्यों के कुचले हुए अंगों और कीमा बने हुए मांस का दलदल मिल के चारों ओर फैला हुआ है। उस दल-दल में घुटने तक धंसे हुए, हांफ-हांफ कर चलते हुए सरीन साहब अपनी मिल की ओर चले जा रहे हैं...। उन का सिर घूम गया। सिर को दोनों हाथों से थाम कर

थे बैठ गईं । अर्ध-मूर्छित-सी उस अवस्था के दूर होने पर कोठी और मिल के बीच की सड़क से आती हुई नारों की पुकारें महानाद के गर्जन की भांति उन्हें सुनाई देने लगीं और उन की संज्ञा फिर लोप हो गई ।

बगल के कमरे से आ कर नर्स ने कहा—"बच्चे के पेट में दवाई नहीं ठहर रही । फोन पर डाक्टर को खबर कर दीजिये ! डाक्टर ने नौ बजे खबर देने को कहा था ।"

मिसेज सरीन को याद आया रात के नौ बज गये हैं । लड़खड़ाती हुई वे बच्चे के कमरे में गईं । वे बच्चे को उठा कर छाती से लगा लेना चाहती थीं परन्तु नर्स ने उन्हें रोक दिया—"ना ! बच्चे को छेड़िये नहीं !"

बेबस और निराश हो वे फोन करने के लिए ड्राइंग रूम की ओर चलीं । पर्दे को हटा कर उन्हों ने दरवाजे में कदम रखा ही था कि ठिठक कर रुक गईं । साहब कमरे के बीचोंबीच खड़े थे । उन के चेहरे पर क्रोध और झुंझलाहट भरी हुई थी । दो आदमी उन के दायें-बायें खड़े थे । बाईं ओर खड़ा आदमी हाथ उठा कर कह रहा था —"हुजूर, यह हम से नहीं हो सकता !" .... मजदूरों के ऊपर लारी हम किस तरह चला दें ? वह सामने से हटते नहीं । आप पुलिस बुलाइये या उन्हें हटाइये । हम गरीब आदमी हैं । हमारे भी बाल-बच्चे हैं । हुजूर, यह हम से नहीं हो सकता । हुजूर, हम कल से लारी लिए खड़े हैं । हमारा काम सवारियों को कानपुर तक पहुंचाना था । हमारा बहुत नुकसान हो रहा है । हुजूर, हम लखनऊ लौट जायंगे । हमारी मजदूरी हमें मिल जाय !"

साहब ने गुस्से से पैर पटक कर कहा—"तुम गाड़ी चलाओ ! मजदूर खुद हट जायगा । उस की परवा तुम क्यों करता है ? जब तक लारी मिल के भीतर नहीं जायगा, मजदूरी नहीं मिलेगा !"

"नहीं हुजूर, मजदूर जब तक नहीं हटेंगे, हम गाड़ी नहीं बढ़ायेंगे ! आदमी नीचे दब कर मर जायंगे तो कौन जिम्मेदार होगा ?"—एक कदम पीछे हटते हुए उस आदमी ने उत्तर दिया ।

"जिम्मेवार हम हैं !"—जोर से पैर पटक कर साहब बोले, "हमारा हुकुम है ! हम बीस लाख तक अपनी इज्जत के लिए खर्च कर देगा ! ...... क्या समझता है तुम ?"

और पीछे हटते हुए उस आदमी ने सिर हिला कर इनकार किया—"नहीं हुजूर, हम गरीब आदमी हैं। छोटे-छोटे हमारे बाल बच्चे हैं। हम किसी की बददुआ नहीं लेगा।"

"निकल जाओ यहाँ से ! ···जाओ ! ···आदमियों को उतार कर अपनी गाड़ी ले जाओ ?"—साहब ने दरवाजे की ओर बांह बढ़ा कर संकेत करते हुए डांटा। दूसरे आदमी की ओर घूम कर उन्हों ने हुकुम दिया, "मिल की लारी लाओ एक दम ! हम खुद जायगा।"

दोनों आदमी चले गये और साहब पिंजरे में बन्द शेर की भांति कमरे में चक्कर काटने लगे। मिसेज सरीन आगे कदम न उठा सकीं। पीछे लौट के किवाड़ की ओट खड़ी हो गईं। कुछ भी उन की समझ में नहीं आ रहा था। जान पड़ता था, संसार चक्कर खा कर, ढह कर गिर पड़ा चाहता है, भयंकर अन्धकार फैला जा रहा है। उन के हृदय की धड़कन उन के मस्तिष्क में गूंज रही थी। कुछ मिनिट बाद भारी लारी के इंजन के घुर्रा कर थम जाने का शब्द सुनाई दिया। उस के साथ ही बरामदे में साहब के जूतों की आहट और एक बार फिर से लारी के इंजन के चलने की घरघराहट सुनाई दी। मिसेज सरीन के हृदय में एक भयंकर आशंका ने कहा "वे चले गये ! ··· ···उन्हें नहीं जाना चाहिए था। मुझे उन्हें रोक लेना चाहिए था। वे क्या करने जा रहे हैं?"—उन का माथा चकरा गया। समीप के सोफा पर वे गिर-सी पड़ीं।

नर्स ने आ कर पूछा "डाक्टर ने बेबी की बाबत क्या कहा ? बेबी परेशान है।"

बेबी का नाम सुनते ही मिसेज सरीन के सामने से दृश्य बदल कर उन की बेबी दिखाई देने लगी। गिरते हुए संसार का बोझ उन के बेबी को कुचले डाल रहा है। दूसरे क्षण नर्स के स्थान पर उन्हें वह आदमी खड़ा दिखाई देने लगा जो अभी साहब के सामने मजदूरों पर मोटर चलाने से इंकार कर रहा था। उन के कानों में उस के शब्द गूंजने लगे—हुजूर, हमारे छोटे-छोटे बाल-बच्चे हैं, हम किसी की बददुआ नहीं लेंगे। फिर याद आया वह पत्र में पढ़ा मजदूरों का एलान !

दिखाई देने लगा, साहब पैर पटकते हुए मजदूरों को स्वयं लारी से कुचल देने के लिए चले जा रहे हैं। हाय, उन्हें रोका क्यों नहीं ? हृदय की धड़कन

फिर मस्तिष्क में गूंजने लगी। होश कायम रखने के लिए सोफे के गद्दे को मुट्ठियों में दबाते हुए उन्हों ने चिल्ला कर पुकारा--"बैरा, जल्दी ! एक दम गाड़ी लाने को बोलो !"

× × ×

मिसेज सरीन की मोटर के सामने, तीव्र प्रकाश की फैली हुई तिकोन में मिल के फाटक के सामने भीड़ खड़ी थी। भीड़ के नारे उन के कानों को बहरा किये दे रहे थे। फाटक के सामने आगे-पीछे कई लारियां लाइन में खड़ी थीं। लारियों की ओट से दिखाई दे रहा था कि सामने जमीन पर कुछ आदमी लेटे हुए थे। सब से आगे की लारी के समीप मिल के दूसरे कर्म-चारियों के साथ साहब खड़े थे। जो कुछ वे कह रहे थे, सुनाई न दे सकता था परन्तु उन की बांहों और गर्दन के हिलाने से जान पड़ता था कि वे जमीन पर लेटे हुए मजदूरों को सामने से हट जाने के लिये धमका रहे थे।

इस से पहले कि मिसेज सरीन की गाड़ी थम पाये, साहब लपक कर सब से आगे की लारी में ड्राइवर की जगह पर चढ़ गये। मिसेज सरीन के मोटर से उतरते ही सब से आगे की लारी जोर से थर्रा उठी। लारी की दैत्य की सी आँखों से निकलती तीव्र चिंगारियों के प्रकाश में फाटक और सामने लेटे हुए मजदूर चमक उठे। वे आगे बढ़ ही रही थीं कि लारी चल पड़ी। उन्होंने देखा, सामने लेटे हुए मजदूर चिल्लाते हुए उठ कर एक ओर खड़े होने लगे। भीड़ की चिल्लाहट और नारों के बावजूद लारी आगे बढ़ी। मिसेज सरीन को दिखाई दिया, अब भी एक आदमी लेटा हुआ था। लारी झटका खा कर उसे कुचलती हुई आगे निकल गई।

"खून ! खून ! मार डाला ! मारो हत्यारे को ! माथुर भाई जिन्दाबाद ! सरीन मुर्दाबाद ! पूंजीवाद का नाश हो !" की चिल्लाहट मच गई। मिसेज सरीन के कुण्ठित कानों में केवल एक शब्द सुनाई दिया--"माथुर भाई !" झुक कर उन्होंने देखा, खून से लथपथ शरीर छटपटा रहा है। कुछ मजदूर चिल्लाते हुए आगे बढ़कर उस शरीर को उठा एक ओर ले जाना चाहते थे। उस समय मिसेज सरीन का क्षीण और अधिकार पूर्ण शब्द सुनाई दिया--"इधर लाइये इन्हें ! गाड़ी में रखिये !"

"माथुर भाई जिन्दाबाद !""सरीन मुर्दाबाद !" के नारे लगाते हुए और ईंट-पत्थर बरसाते हुए मजदूर साहब की लारी के पीछे मिल में घंस गये। मिसेज सरीन माथुर को लिए लेडी से कोठी में लौटीं। नर्स की सहायता से माथुर के कुचले हुए घायल शरीर को पलंग पर लिटाया गया। कैप्टन बुड नर्स का फ़ोन पाकर बेंदी को देखने आये थे। आते ही उन्होंने माथुर के अचेत शरीर में इंजेक्शन दिये। अर्ध-चेतना के चिह्न प्रकट होते ही माथुर के मुख से बहुत धीमे स्वर में सुनाई दिया—"मजदूर जिन्दाबाद ··· !" मूर्छित हो जाने से पहले उनके मस्तिष्क और जिह्वा पर जो विचार था, वह प्रकट होगया। डाक्टर बुड ने शरीर के फटे अंगों में टाँके भरे और कुचले हुए अंगों में पट्टियाँ बांधकर खून बहना बन्द कर दिया। मिसेज सरीन धड़कते हुए हृदय से पलंग के पास खड़ी थीं और नर्स माथुर को सम्भाल रही थी। मूर्छा दूर होने पर मिसेज सरीन को पहचान माथुर ने पूछा—"क्या हुआ ?"

हाथ से चुप रहने का संकेत करते हुए उन्होंने कहा—"चुप रहिए, सब ठीक है।" माथुर ने फिर प्रश्न किया—"हड़ताल तो नहीं टूटी ?"

मिसेज सरीन ने फिर चुप रहने का संकेत किया विकलता से इधर-उधर देखकर, माथुर ने फिर पूछा—"मेरे साथी कहां हैं ? आप मुझे क्यों उठा लाईं ?"

अपनी इस करुणा के प्रति इस अवस्था में भी माथुर की विरोध भावना देख उन्हें विरोध भरी दुनिया और माथुर की नई दुनिया का ख्याल आगया। कांपते हुए होठों को दबाकर उन्होंने कहा—"शांत रहिये, भगवान् को याद कीजिये !"

दूर से गोली चलने का धड़ा-धड़ शब्द सुनाई दिया। चौंककर माथुर ने पूछा—"क्या गोली चल गई ?"

भयंकर धड़ाके के शब्द से समीप के कमरे में लेटी हुई बच्ची चीख कर रो पड़ी। मिसेज सरीन जाकर बच्चे को उठा लाईं। उसे माथुर के पलंग पर लिटा आंसू भरे कातर स्वर में उन्होंने याचना की—"इसे क्षमा कीजिये, आशीर्वाद दीजिये !"

माथुर के नेत्र चमक उठे। धीमे से बोला—"जियो! ...... नई दुनिया बसाओ!" मिसेज सरीन के आँसू टपक पड़े। परन्तु माथुर की छिन्न सी आंखें देख उसके मुख में चिम्मच से जल डालने के लिए वे आगे बढ़ीं।

माथुर के श्वास की गति देख नर्स ने संकेत किया, व्यर्थ है, यह अन्तिम श्वास है। आंसू भरी आंखों उस से मुख में जल की बूंदें टपकाते हुए वे क्षमा की याचना कर रही थीं।

"मैं आ सकता हूं?"—सुनकर और आंख घुमा कर पीछे दरवाजे की ओर उन्हों ने देखा। सिर से टोपी उतार कर एक पुलिस अफसर ने झुक कर सलाम किया। होंठ हिलाने में असमर्थ मिसेज सरीन ने आंखों से ही प्रश्न किया—"क्या?"

कठिनता से सुनाई दे सकने वाले स्वर में उत्तर मिला—"बहुत अफ-सोस है। दुख की बात है............सरीन साहब....... उनका शरीर लाया गया है।"

"हे भगवान...........!" पुकार, मिसेज सरीन नर्स की बाहों में गिर पड़ीं।

बारह

ओ दुनिया !

भयंकर भन-भनाहट से मकान कांप उठा, जैसे कोई जंगी हवाई जहाज छत पर गिरा हो। चौंक कर पुकारा—"ऐसे किसी का मन काम में कैसे लग सकता है ?"

रोते हुए बच्चे की क्षुधा पूर्ति के लिये उसे साड़ी के आंचल में खींचते हुए श्रीमती जी बोलीं—"तो दुनिया भर के काम तो तुम्हारे लिए बन्द नहीं हो जा सकते। मेहरी के हाथ से बर्तन गिर पड़े तो क्या करें ?"

नेत्र मूंद, सांस रोक और कलम फिर से हाथ में तौल मन को एकाग्र करने का यत्न कर रहा था कि गली से खोंचे वाले ने खिड़की में मुंह सटा, पंचम स्वर में पुकारा—"हलुए ताजे गरम।"

कलम फिर रह गई। भल्लाकर श्रीमती जी की ओर देखा। इस पुकार से बच्चा भी विक्षिप्त हो गया था। उसे अहिंसात्मक मूक-विरोध का उत्तर दिया—"वह गली में अपना सौदा बेच रहा है; तुम्हें क्या ?"

कलम रख दिया और शान्त भाव से उन्हें प्रत्युत्तर दिया—"क्यों; ताजे हलुए से मुझे कुछ मतलब क्यों नहीं ? अंधेरे में छः बार वह चक्कर लगा गया है। क्या ताजा हलुवा खाने वाले कोई नहीं ? तुम समझती तो हो नहीं, क्या लोग गरम ताजा हलुवा पसन्द नहीं करते जो इस कड़ाके की सर्दी में ठिठुरता हुआ यह गरीब खुशामद करता फिरता है कि ताजा गरम हलुआ कोई खा ले ! ......परोपकार की वेदना इसे विकल किए हुए है !"

ताजे गरम हलुवे के जिक्र से श्रीमतीजी के मुख में भी पानी आने लगा था। उठती हुई तृष्णा का दमन करने के लिए वे बोलीं—"खाक! मूंगफली के तेल में बनाया होगा!"

"बस यही तो हम कहना चाहते थे।"—श्रीमती को चुप कराने के लिए हाथ उठाये हुए अपनी बात समझाई, "लोग मलिया खायें या ताजा गरम हलुआ, इस से तो कोई मतलब खोमचे वालों को है नहीं। इन्हें मतलब है कि लोगों की जेब में जो पैसा है, वह इन्हें मिले। नहीं तो इनके बाल-बच्चे भूखे मर जायेंगे। सुनो, यह जीवन का संघर्ष है। यह लोगों को गरम हलुवा खिलाकर अपना जीवन निर्वाह करना चाहता है। जाड़े में गली-गली चिल्लाता फिरता है, हलुआ ताजा गरम! जैसे गरम और ताजा हलुआ ऐसा अकिंचन पदार्थ है कि उसे खिलाने के लिए लोगों की मान-मनौती करने की आवश्यकता है। हलुआ तैयार करते समय इसे यह चिन्ता नहीं सताती कि कितने आदमी कलेवा न कर सकने के कारण भूख से व्याकुल होंगे! इसे चिन्ता रहती है कि इतने तेल, सूजी और गुड़ के खर्चे से उसे कितने पैसे मिल सकेंगे। वह भूखों को नहीं पैसे वालों को पुकार रहा है। घर में बैठे लोग समझते हैं, साला मूंगफली के तेल में आटा और गुड़ खचर कर ठगने आया है। समाज के लिए कोई उपयोगी और आवश्यक काम करने के लिए इसे अवसर नहीं, इसीलिए इस ठगी से इसे जीवन का संघर्ष चलाना पड़ता है........।"

गली में बहुत जोर से बाजा और ढोल बजने से कोहराम मच गया। मेरी बात को अधसुनी छोड़, बच्चे को आंचल के भीतर चिपकाये, श्रीमती जी गली में झांकने लगीं। उन्होंने पुकारा—"देखो तो, यह क्या........?"

रामलीला की सेना की भाँति रंग-बिरंगे कपड़ों में सजे बाजा बजाने वालों के पीछे-पीछे एक तांगे में ग्रामोफोन पर रिकार्ड बज रहा था, 'मोरे अंगना में आये आली, मैं चाल चलूं मतवाली।....' रिकार्ड समाप्त हो जाने पर फिर लाउडस्पीकर से आवाज आई—"हमारी गोली पाँच मिनट में सिर दर्द और बुखार को दूर भगाती है। पेट को किसी किस्म का नुकसान नहीं पहुंचाती। जरूरत के समय यह गोली सब लोगों को खानी चाहिए!"—यह नाटक कर बाजे का जुलूस गली से बाहर निकल गया।

श्रीमतीजी से चार आँखें होने पर अपनी बात पूरी करने के लिए कहा—"यह देखा; संसार का सिर दर्द दूर करने के लिए यह स्वयम् कितनी सिर-दर्दी ले रहे हैं ? जितना खर्च सिर दर्द की गोली की खबर देने में किया जा रहा है उस से तो शहर भर को बरस भर गोलियाँ खिलाई जा सकती हैं ! बेचारे गोलियाँ तक मुफ्त बांटते हैं, कितने परोपकारी हैं ये ?" हंसने के लिए मेरी बाछें निकल नहीं पाई थी कि श्रीमती जी ने भंवे चढ़ाकर कहा, "वाह रे वाह, ये परोपकारी हैं ? बहुत जानते हो तुम ?"

"""यही, यही तो कह रहा हूं, कितने छलछन्द दुनिया में रोटी कमाने के लिए करने पड़ते हैं ? यह हजारों रुपया बरबाद किया जा रहा है कि दूसरी कम्पनियों और हकीमों की सिर दर्द की गोली छोड़कर लोग इन की गोली खाना सीखें ताकि इन्हें मुनाफा हो ? और सुनो, इन की सिर दर्द की गोली करोड़ों रुपये की न बिकेगी तो विज्ञापन में खर्च किया लाखों रुपया कैसे वसूल होगा ? गोली बनाने वाले कारखाने के मालिक काली माई के मन्दिर की सीढ़ियों पर माथा रगड़ेंगे—हे भगवान, संसार भर के सिर दर्द हो और हमारी गोली बिके…………!"

गरजकर श्रीमती जी ने कहा—"बातें तो बहुत बनाओगे और कागज काग़ज़ कर काले करोगे। दुनिया भर को तो मूरख बनाते हो और खुद को चार पैसा कमाने की लियाकत है नहीं !"

समाज और संसार का सुधार करने के लिए सिद्धान्त आविष्कार करने के मेरे उत्साह पर ठंडा जल छिड़कती हुई श्रीमतीजी गोद से नीचे खिसकते बच्चे को ऊपर खींचती, रसोई घर की ओर चली गई। तब उदासी से सोचा—घर बैठने की सुविधा नहीं है। कुछ काम से बाहर चल देना होगा। लाला आते ही होंगे क्योंकि उस रोज उनके किसी तरह प्राण न छोड़ने पर आज कुछ देने का वायदा कर लिया था !

परन्तु मूरख लाला इतना तो सोचता नहीं कि देगा तो कहां से ? जरूरत भर से कुछ बचा सके बिना दिया कहां से जा सकता है ? बचा सकने की तो बात दूर है। यहां अगर जरूरत ही पूरी हो सकती तो लाला से उधार लेने के श्राप में ही क्यों फंसता ? और लाला कहेंगे, जैसा कि वे सदा कहते हैं—भला करने का जमाना नहीं है बाबू ! तुम्हारी जरूरत देखकर उस

मगर फिर कठिनाई से रुपया निकाल तुम्हें दिया और अब तुम यों सता रहे हो ।"

लाला ने रुपया कठिनाई से अवश्य निकाला है । अपनी सौ जरूरतों को उन्होंने पूरा नहीं किया तब जाकर हजार, दो हजार रुपया वे जोड़ पाये होंगे कि लोगों को कठिनाई और आवश्यकता पड़ने पर वे रुपये पर एक आना माहवार सूद लेकर उन की सहायता कर सकें । इस ढंग से अब वह रकम बीस-पच्चीस हजार पर पहुंच पाई है । अब भी वे उस रुपये को अपनी कोई जरूरत पूरी करने में खर्च न कर, एक आना रुपया माहवारी सूद लेकर बढ़ाये चले जा रहे हैं, शायद इसलिये कि लोगों का भला होता रहे । अपने परिश्रम से कमाये धन को अपनी आवश्यकता पूर्ति में खर्च न कर उन्होंने उसे बचा रखा है कि दूसरे के परिश्रम से कमाया धन उस से समेटा जा सके ।

श्रीमती जी की बहिन की पहली लड़की की शादी में सौ डेढ़ सौ रुपया खर्च न करने से समाज और परिवार की नजर में हमारी नाक ऐसी कट जाती कि उस का फिर पनप सकना कठिन था इसलिये रुपया उधार लेना ही पड़ा और अब उस सौ रुपये और सूद की अदायगी........। लाला के तकाजों के भय से अब घर से भाग जाने के सिवा चारा नहीं । यही कृतज्ञता मैं लाला के प्रति प्रकट कर सकता हूँ । मैं इस दुनिया से बहुत परेशान हूँ । अपने ही घर में मेरे लिये जगह नहीं । एक लम्बी सांस लेकर निकल पड़ता हूँ ......।

लाला ने अपने परिश्रम से कमा और बचा कर जो रुपया रखा था वह उन का ही परिश्रम था । लाला ने कठिनाई के समय या अपनी आवश्यकता के लिये इसका उपयोग करने का विचार रखा होगा । खैर, वह था तो लाला के परिश्रम का ही परिणाम ? मनुष्य के परिश्रम की तरह उस पूंजी में भी उत्पादक शक्ति है । लाला यह परिश्रम दूसरों को उधार देकर उन्हें कुछ पैदावार करने की सुविधा देते हैं और उस पैदावार में से अपने उधार दिये परिश्रमका भाग लेकर संचय करते जाते हैं । इस से मुझे या किसी दूसरे को सिर दरद क्यों हो ? पर देखता हूं कि सिर दरद होता है । होता है तो क्यों ?

श्रीमती जी को या उन जैसी बुद्धि के लोगों का यह बात समझ नहीं आ सकेगी। उनका तो ख्याल है कि मैं बड़बोला और काहिल हूँ और दूसरों की समृद्धि से ईर्षा करता हूँ। आजकल यही बीमारी दुनिया में फैल रही है। नहीं तो परिश्रम करने वाले के लिये कमाई के अवसर की कमी नहीं। मुझे यह बात दूसरे ही ढंग से समझ में आती है। मैं देखता हूँ कि लाला और लाला की बिरादरी के देशी-विदेशी लोग अपने संचित परिश्रम यानी पूंजी के जोर पर दूसरों के उपार्जित परिश्रम को मुनाफे के रूप में छीन कर जमा करते जाते हैं। इस संचित परिश्रम को वे न तो मेहनत से कमाई करने वालों को खर्च करने देते हैं न स्वयम् ही खर्च करते हैं कि यह उपार्जित परिश्रम या रुपया दूसरों के हाथ में जा उन की आवश्यकता पूर्ति करे। माया पर बैठे सांप की भांति वे निष्काम भाव से या निष्प्रयोजन रुपया या पूंजी बटोरते जाते हैं, किस लिये? सम्पत्ति द्वारा समाज पर शासन करने के लिये।

यह इस दुनिया का पूंजीवाद है। इस समाज में परिश्रम की शक्ति असहाय है और सब शक्ति पूंजी की ही है। आज का सिद्धान्त है, पूंजी की वृद्धि के लिये पूंजी कमाओ। मजा यह है कि जिन लोगों के हाथ में पर्याप्त पूंजी है, वे ही और भी कमा पाते हैं। जिनके हाथ में कुछ नहीं, केवल परिश्रम ही कर सकते हैं वे बैठे हाथ मला करते हैं। पूंजी कमाने के लिये जमा पूंजी को मिल या व्यापार की शकल में पैदावार की शक्ति का रूप दिया जाता है। वह और भी अधिक पैदावार करने लगती है। परन्तु पैदावार के लिये चाहिये खरीददार!

खरीददार आयें कहाँ से? खरीददारी होती है पैसे से! जब परिश्रम का फल परिश्रम करने वाले के हाथ में रहे तभी वह कुछ खरीद सकता है। यहाँ जो पैदावार होती है वह परिश्रम करने वाले के हाथ रह नहीं पाती। पूंजी के देवता जब खरीददार नहीं पाते तो पैदावार में अपनी पूंजी फंसाना व्यर्थ समझ पैदावार कम कर देते हैं। इससे बेकारी बढ़ती है यानि खरीददार घटते हैं। मैं भी दैवयोग से दैव की इस दुनिया के पूंजी-चक्र से बाहर आ पड़ा हूँ...........
और सोचता हूँ, इस दुनिया में मेरे लिये और मुझ जैसे करोड़ों के लिये स्थान नहीं रहा।

गली में सामने से भले घर की एक बहू चली आ रही है। चादर के

साथ बाल्य मिलाकर उसने अपने शरीर, मुख और हाथों को ढक रखा है। ताकि कोई जान न सके वे कैसी हैं, क्या हैं? बस उनके पति ही घर की चारदिवारी में उनका उपयोग कर सकते हैं। मन में मैं कल्पना करता हूँ कि वे काली-काली, दुबली-पतली होंगी परन्तु आँखें फेर समीप से एक ओर बच कर यों निकल जाता हूँ कि मुझे मतलब ही नहीं, कोई जा रही है या नहीं, ऐसा करना जरूरी है। इसी से मैं सच्चरित्र समझा जाता हूँ। यों तो मैं जानता हूं कि स्त्री क्या होती है, उस का क्या उपयोग हो सकता है परन्तु ऐसी बात अपनी-अपनी स्त्री से ही करनी चाहिये।

हमारे यहां जीने में मोड़ पर रोशनी के लिये एक झरोखा है। आते जाते मोड़ पर कदम ठिठक जाते हैं। उस झरोखे से नीचे एक छोटे से आंगन का एक कोठरी वाला मकान दिखाई देता है। इस निकम्मे, गन्दे घर में, बस समझ लीजिये, गूदड़ी में लाल वाली बात है। उसके बाबू दफ्तर चले जाते हैं तब वे चौके-चूल्हे से फ़ुर्सत पाकर साबुन से मुंह धो, बाल सँवारती हैं। नई धुली धोती पहनती हैं। माँग निकाल कर सिंदूर भरती हैं और लगाती हैं, हृदय के रक्त की सी लाल-लाल बिंदी। उनकी लम्बी-लम्बी गेहूंआ उंगलियों में सजीव कोमलता है। पतली मीनार का-सा लम्बा छरहरा बदन। बादामी गोरा लम्बा सा चेहरा और लम्बी-लम्बी आँखें ऐसी हैं जिनका चित्र बन सके तो लोग ड्राइंगरूम में लगायें। शरीर का आकार लिपटी धोती में से झलकता रहता है। सब श्रृंगार कर, खाट पर बैठ, वह रंगी-बिरंगी लच्छियों से तकिये का गिलाफ काढ़ा करती है। मिनिट दो मिनिट खड़े होकर मैं उसे देख लेता हूँ। यह बात वह नहीं जानती इसलिए उसको स्वाभाविक अवस्था में उसे देख पाता हूँ।

उन के घर का दरवाजा कभी खुला नहीं रहता। महरी भी आती है तो तो वह लम्बा घूंघट खींच साँकल खोल परे हट जाती है। उस का वह रूप लावण्य उस आँगन में बन्द रहता है। वे ऐसी सतवन्ती हैं कि कभी घर से बाहर झाँकने की इच्छा भी शायद उस के मन में नहीं हुई। उस का जीवन दफ्तर में साठ रुपये पाने वालों बाबू की इच्छा और आवश्यकता पूर्ति के लिए है। वही उस की दुनिया है। जैसा उस का रूप है, उसे देख पाने से हजारों नेत्रों की तृप्ति होती परन्तु ऐसा क्यों हो? स्त्री को देखकर तृप्ति

अनुभव होना भी तो उसका एक उपयोग है। स्त्री का उपयोग उस के एक मात्र मालिक के अतिरिक्त कोई करे तो यह अत्याचार है .... ।

यह बात केवल किसी एक ही मानव रूप नारी के लिए नहीं। 'आधी दुनिया' की यही बात है। यह 'आधी दुनिया' पेट की रोटी और तन के कपड़े के लिए क्या नहीं सहती ? या इन का मन ही ऐसा बुझ गया है कि मूक गुलामी को अपना परम धर्म और परम सम्मान समझे बैठी है। इन के मालिक बाबू जी का मूल्य या कद्र मनुष्यों की मण्डी में अधिक नहीं है। जैसे-तैसे कान दाब कर वे परिश्रम के खरीददार के यहां अपनी मजदूरी बेच कर दो रुपल्ली रोज पाते हैं। इसी से संसार भर की आवश्यकता और आनन्द उन्हें प्राप्त करना है। अपने परिमित सामर्थ्य से जो कूड़ा-कचड़ा भोजन के रूप में वे अपने शरीर में भर पाते हैं, जीवन की शक्ति के रूप में वह उबल पड़ता है। उस उबाल को शांत करने के प्रयत्न में वे अपने आप को भूल जाते हैं।

ठीक उसी समय जब यह बाबू कड़वे तेल से गन्धाती फटी रजाई में बेबस सारे शरीर को निचोड़ आत्म-विस्मृत हो जाते हैं, पूजी के प्रभु इन जैसे मनुष्य-पशुओं के परिश्रम के बल पर हजार बत्ती की रोशनी में, नन्दन-कानन की सुगन्ध के बादलों में कल्पना के समान सूक्ष्म वस्त्रों में लिपटी कामिनी रत्नों के दर्शन, सुवास और स्पर्श से तृप्ति अनुभव कर रहे होते हैं। मछली, मेंढक की तरह सौ अण्डे दे कर दूसरे का पेट भरने के लिए चारा तैयार करना उन का काम नहीं............।

मुझे खयाल आ जाता है एक और श्रीमती जी का ! वे 'बड़े आदमी' हैं और उन्हें शौक है कुछ और बड़ा जान पड़ने का। उन के यहाँ महफिल जमती है। जीवन की नितान्त आवश्यकता की बातों के लिए वहाँ गुंजाइश नहीं। वहाँ आटा दाल के भाव की चर्चा नहीं होती। चर्चा होती है, बेटी डेविस, ग्रेटा गार्बो, लीला चिटनिस और पालमुनी की नाट्यकला का ! बड़े-बड़े बंगलों की सजावट के ढंग का ! मोतियों के दस्तबन्द और हीरे के लाकेट का ! वहाँ लोग बढ़िया सूट और कीमती अचकन पहन कर आते हैं और श्रीमतियाँ ऐसे भांति वस्त्र पहन कर कि मानों चलती-फिरती शीशे की अलमारियाँ हों। उन के परिधान की चतुरता ही यह है कि अधिक से

अधिक दिखाई दें और जान पड़ पड़े कि छिपाने का यत्न कर रही हैं। वे लोग बैठ कर रुपये-डेढ़-रुपये का पान सिगरेट उड़ा देते हैं।

समाज के मामूली आदमियों की निन्दा और चर्चा से उन्हें भय नहीं। साड़ी के आंचल से वे सिर नहीं ढकतीं। आंचल का जरीदार बार्डर गले की परिक्रमा कर नीचे चला जाता है, उन के कोमल गालों, गेहुंआ रंग को शोख कर देने के लिए। अपनी बड़ी बड़ी आंखों के सफेद कोयों में काली पुतलियों को नचा कर वे मुस्करा देती हैं। दर्जी कौशल से उन के लिए ब्लाउज सीता है कि प्रकृति का दिया शारीरिक वैभव उभर आये। जब वे बिना आस्तीन का ब्लाउज पहनती हैं तब उन के कन्धों की गोलाई और बांहों के उज्ज्वल गेहुंआं रंग का और जब वे आस्तीनदार ब्लाउज पहनती हैं तब फिट आस्तीन में बांहों की गोलाइयों का ध्यान उन्हें बना रहता है। अपने चारों ओर बैठे सज्जनों की आंखों में अपने व्यक्तित्व की कद्र भांप कर उन की आँखों में गरूर छा जाता है। बिना झिझके वे कह देती हैं कि स्वयं अपने सन्तोष के लिए ही वे अपने सौंदर्य को बढ़ाने का यत्न करती हैं।

नख-शिख की जाँच पड़ताल करने से इन महिला के सौंदर्य का राज कहीं नहीं मिलता। फिर भी सौन्दर्य का एक आभाचक्र उन्हें घेरे रहता है। सन्तान गढ़ने की कठोर क्रिया को वे टाल जाती हैं ताकि अधिक दिन तक काठियावाड़ी घोड़ी की तरह चुस्त बनी रह सकें। महफिल में चटपटी बात कह सकने के कारण उन की कद्र है। उन की संगति में सन्तोष मिलता है परन्तु घर लौटने पर प्रत्येक प्रवास के बाद परिमाण में बढ़ती हुई अपनी श्रीमती की कोई कद्र हमारी आँखों में नहीं हो सकती। वहाँ काव्य और कला की चुटकियों से काम नहीं चलता। वहाँ तो सदा रोटी-कपड़े की ही बात होती है। यह चीजें पर्याप्त मात्रा में न पा सकने के दुख का रोना रोया जाता है और इस काम में अयोग्य ठहरने के कारण मेरी कलात्मकता अपमानित की जाती है।

और हमारी श्रीमती जी किसी भूल-चूक को क्षमा करने के लिए तैयार नहीं। निर्दय, कठोर, कर्म फलदाता की भाँति वे प्रत्येक भूल-चूक को स्थूल रूप दे कर पेश करती चली जाती हैं। कठिन जीवन के संघर्ष के इस जमाने में वे मेरी कमाई के स्वल्प आय [illegible]र निर्भर करने वाले पैदा किये चली जाती

है। जिस सन्तान की कामना से हमारे पूर्वज तपस्या किया करते थे, उस सन्तान का आगमन अब हमारे लिए महाचिन्ता का विषय बन जाता है। जैसे भरी हुई रेलगाड़ी में चढ़ने की चेष्टा करने वाले मुसाफिर का आदर नहीं होता, उसी प्रकार इस दुनिया में इन के लिए स्थान न होते हुए भी ये सन्तान चले चले जाते हैं।

मैं देखता हूं, विज्ञान द्वारा मनुष्य के मस्तिष्क की पहुंच और उस का सामर्थ्य बढ़ता चला जा रहा है परन्तु ठीक उसी हिसाब से यह दुनिया सिकुड़ती चली जा रही है। मनुष्य के लिए रहने का स्थान और उस के लिए जीवन निर्वाह के अवसर घटते चले जा रहे हैं। मुझ जैसे साधनहीन व्याकुल हो कर देखते हैं कि सब प्रकार से परिश्रम करने के लिए तत्पर रहने पर भी हमें परिश्रम कर सकने का अवसर नहीं मिलता है तो इस शर्त पर कि अपने परिश्रम के फल का बड़ा भाग उन के चरणों में भेंट दें जो परि-श्रम करने का अवसर हमें दे सकते हैं। मैं ही अकेला व्याकुल नहीं। बड़े से बड़े समर्थ धनी भी कहते हैं कि जमाना खराब है, बाजार नहीं, रोजगार नहीं, मुनाफा नहीं। चलती-फिरती कब्रों की इस दुनिया में ऐसा मौका हो तो कहां से ? परिश्रम कर के दाम के रूप में उस का फल पाने का अवसर नहीं तो किस तरह दूसरों के रोजगार पनपाने के लिए हम आधार बन जायें ? इस दुनिया में सन्तुष्ट और सुखी है कौन ?.........इस दुनिया से किसी न किसी किस्म की शिकायत सभी को है।

आध्यात्म कहता है, इस दुनिया की यंत्रणा से बचने का उपाय इस दुनिया को भ्रम समझ इस से आंख फेर लेना है। यदि जीवित रहना है तो जीवन को भ्रम समझ कर उस के प्रति ईमानदारी कैसे निभाई जायगी ? जीवन के संघर्ष में पराजय स्वीकार कर आत्मरूप में 'अहं' को कैसे बलवान बनाया जा सकेगा ? यदि मैं ऐसा करने का यत्न करूं भी, जीवन के सत्य को माया भ्रम के आवरण में ढक कर इस संसार से मुक्त हो जाने में ही अपनी सफ-लता समझ लूं तो इस से 'मनुष्य' का कल्याण किस प्रकार हो सकेगा ? भगवान ने कितने परिश्रम और कितनी साध से इस संसार को बनाया होगा ? मैं इसे निरा भ्रम समझ कर ठुकरा दूं ! महाज्ञानी संसार के सुख-दुख को भ्रम बताते आये हैं परन्तु इस से मनुष्य का दुख तो तनिक भी दूर नहीं हो पाया। संसार को दुखमय समझ, उस से मुंह मोड़, उस से मुक्ति की चेष्टा

करना व्यक्तिगत उपाय है। मैं यदि वैराग्य की अफीम खा कर इस दुनिया से मुक्त भी हो जाऊं तो शेष संसार तो मेरे साथ ही समाप्त हो नहीं जायगा ? सम्पूर्ण संसार को अपने में ही सिमटा हुआ समझ लेना कितना बड़ा अहंकार और स्वार्थपरता है ? और यदि फिर जन्म ले कर इसी दुनिया में आना पड़ा ·········· ?

सामने फुटपाथ पर एक गधा पड़ा रहता है, उस के मालिक धोबी ने उसे बेकार समझ कर छोड़ दिया है ; उसी प्रकार भगवान इस संसार से निराश हो चुके हैं। उस गधे के शरीर में कीड़े पड़ गये हैं और उस का शरीर उन कीड़ों के उपयोग के लिए ही हो गया है। उसी तरह इस समाज और संसार में भी कीड़े पड़ गये हैं। यह कीड़े अपना शरीर मोटा करने के लिए समाज को खाये जा रहे हैं।

समाज का परिश्रम ही समाज का रक्त है। समाज में किए जाने वाले परिश्रम से ही समाज का शरीर और काम चलता है—उस का निर्वाह होता है। पेट भरने, शरीर ढकने की तथा दूसरी आवश्यकतायें पूरी होती हैं वैसे ही जैसे कि शरीर में रक्त से सब अंग पुष्ट होते हैं परन्तु शरीर में कीड़े पड़ जाने पर वे रक्त को दूषित कर शरीर की व्यवस्था बिगाड़ देते हैं।

समाज का रक्त रुपये का रूप धर सब काम चलाता है। समाज के शरीर में कीड़े पड़ गए हैं। यह कीड़े मुनाफ़ा खाते हैं, समाज के रक्त को मुनाफ़े के रूप में अपनी तोंद में भरते चले जाते हैं और समाज का शरीर रक्तहीन होकर निश्चेष्ट होता जाता है। बेरोज़गारी और बेकारी से समाज के अंग हिल नहीं पाते। अंगों के हिल न पाने से शरीर बेजान हुआ जा रहा है। शरीर के मुनाफ़ाखोर कीड़े रक्त को समेट रहे हैं। मुनाफ़ाखोरी को न्याय समझने के रोग का सब से विकट उदाहरण हमने देखा १९४३ में बंगाल के अकाल में। समाज और बाजार में अन्न रहते तीस लाख आदमी अन्न का बढ़ा दिया गया मूल्य न दे सकने के कारण मर गये ! अन्न के बिना मरने वाले इन लोगों की लाशों पर मुनाफ़ाखोरों ने प्रति मुर्दा दस हज़ार रुपया कमाया, यह सरकारी आंकड़े बता रहे हैं। यदि समाज का शरीर जीवित रहना है तो उसे इन कीड़ों से मुक्ति दिलानी होगी।

यह सब सोचने के बाद जब श्रीमती जी के शब्दों के कोड़ों की मार से

पीठ मिलना उठता है तो मैं समाज की चिन्ता छोड़ अपना और परिवार का पेट पालने की बात सोचने लगता हूँ। कैसे भी, किसी तरीके से रोजगार करूं ! यानी कहीं से सस्ता माल खरीद लूं ......यानि परिश्रम करके माल तैयार करने वालों को जितना मूल्य मिलना चाहिए उससे कम उन्हें दूँ और महंगा बेचूं ! यानि माल तैयार करने में जितनी लागत का परिश्रम लगा है उस से अधिक मूल्य ले लूं। ऐसा कर पाऊँ तो जीवन मजे में कटे और मेरी ही जैसी हालत में रहने वाले लोग, जो फिलहाल मुझे अकिंचन समझ घृणा की दृष्टि से देखते हैं, मेरा आदर करने लगें। वे मेरा आदर क्यों न करेंगे ! उस समय रुपये के रूप में कितनी अपार शक्ति मेरे हाथ में होगी....? तब उन के पेट पर पत्थर रख देने की शक्ति मेरे हाथ में होगी।

संसार के बुद्धिमानों का उपदेश है—अपनी निबेड़ तू, तुझे गैरों की क्या पड़ी ! गैर की बला को अपने सिर सहेड़ लेना कोई बुद्धिमानी नहीं। सभी सफल बुद्धिमान व्यक्ति ऐसा ही करते हैं और वह भूल जाते हैं कि दूसरों की नजरों में वे भी गैर हैं। व्यक्तिवादी दृष्टि से सभी लोग एक दूसरे के लिये गैर हैं परन्तु जब यह दिखाई देता है कि इस दुनिया की मुसीबत मेरी अकेली निर्बल बाहों के बल से दूर नहीं हो सकती तो गैरों को अपना ही समझ लेना पड़ता है।

मुझे इस दुनिया में सभी ओर भय और आशंका की धड़कन दिखाई देती है। सुख और सन्तोष के साधन जिन के पास मौजूद हैं वे भी तो इस दुनिया से परेशान हैं और इस से अच्छी एक दुनिया की कल्पना में सन्तोष पाते हैं। तीर्थ-स्थान में दो लाख रुपये की धर्मशाला बनवाकर स्वर्ग में अपना स्थान रिजर्व करा लेना सहल उपाय है। इस उद्देश्य से भूखे भिखमंगों को भोजन भी कराया जाता है और जाड़ा आने पर उन्हें सौ दो-सौ कम्बल भी बाँटे जाते हैं। इस दुनिया में कौशल और चातुर्य से दूसरों के परिश्रम का परिणाम (पैसा) ऐंठ कर और फिर उन्हें दान देकर उस दुनिया का प्रबन्ध किया जाता है लेकिन पुण्य कमा सकने के इस मार्ग को पूरा कर सकने के लिए इस दुनिया में कंगाली कायम रखना आवश्यक है।

व्यक्तिवादी धर्म मनुष्य को मनुष्य का शत्रु बना देता है इसलिए मनुष्य की लूट खसोट की जाती है और अदृश्य भगवान को अपना समझा जाता है।

इस दुनिया में जिन सुखों के लिए मन तरसता रहता है, उन्हें उस दुनिया में पाने के लिए भगवान के सामने गिड़गिड़ाया जाता है।

यदि साधनहीन लोग उस दुनिया को भ्रम मान कर संतोष पाने के लिए संघर्ष न करें तो दो लाभ होते हैं। एक तो इस से अवश्य उस दुनिया में उन का अधिकार हो जाता है। दूसरे इस दुनिया में सुख संतोष के साधनों के स्वामी लोगों का जीवन सुख से कट पाता है। अपना पेट भरने के लिए गरीब लोगों के संघर्ष का भय अमीरों को नहीं रहता। बड़े आदमी यह दुनिया खरीद लेने की चेष्टा करते हैं और गरीब आदमी इस दुनिया से हाथ धोकर उस दुनिया की आशा करते हैं। मैं समझ नहीं पाता हूं कि इन दोनों में कौन समझदार है ?

हमारे लाला वास्तव में चतुर और दूरदर्शी हैं। उनकी व्यापारिक बुद्धि केवल इस दुनिया तक ही सीमित नहीं। वे उस दुनिया को भी नफे के तरीके पर कमाते हैं। भगवान की समदृष्टि में सब एक समान हैं। उनके दरबार में मनुष्यों और दूसरे जीवों में भेद नहीं। पुण्य का लेखा करते समय वहां यह नहीं लिखा जायगा कि चींटी को तृप्त किया या हाथी को। इसलिए लाला एक छटांक आटे में आधी छटांक चीनी मिलाकर प्रातः भ्रमण के समय, चीटियों के बिलों पर बिखराकर हजारों नहीं लाखों जीवों को तृप्त करने का पुण्य, भगवान के रजिस्टर में अपने नाम दर्ज करा लेते हैं और फिर करुणा विगलित स्वर में कहते हैं—"इन बेचारे असहाय जीवों का संसार में कौन है ? आदमी को तो रामजी ने दो हाथ-पांव दिये हैं।"

धर्म, महात्मा और सरकार सब इस बात का उपदेश देते हैं कि असहाय जीवों और असहाय बनाये गये मनुष्यों पर दया करने से आप का, इस संसार का भला हो सकता है। असहाय, साधनहीन और बेचारा होकर भी अभी तक स्वयं अपना निर्वाह कर सकने के सामर्थ्य का अभिमान मुझ में बाकी है। इसलिए जो लोग 'वो दुनिया' कमाने की आशा में मुझ पर कृपा और दया करना चाहते हैं उनके प्रति एक प्रकार की असाधु-भावना मेरे हृदय में जाग उठती है। दूसरे की इच्छा से उस के उपयोग में आने वाला स्थूल देह पशु बन जाने की अपेक्षा मैं आत्म-निर्णय का अधिकार लिए भूखा मनुष्य ही बना रहना चाहता हूं।

मैं स्वयम् इस दुनिया से असंतुष्ट हूं और उस दुनिया का सपना देखता हूं जिसमें मनुष्य को आत्म-निर्णय का अवसर और अधिकार हो। परन्तु ऐसा कर सकने के लिए समाज के रक्त को मुनाफा बना कर चूस लेने वाले कीड़ों को दूर करना ही होगा। यह कीड़े समाज के शरीर को टाइफाइड, तपेदिक, कोढ़ या पूंजीवाद, तानाशाही से ग्रस्त किए हैं परन्तु व्यक्तिगत रूप से मुक्ति चाहने वाले लोग मेरे उस दुनिया के स्वप्न को हिंसा बता कर उसका विरोध करते हैं। उनकी दृष्टि में उन का स्वार्थ ही सब से बड़ा समाजहित और न्याय है।